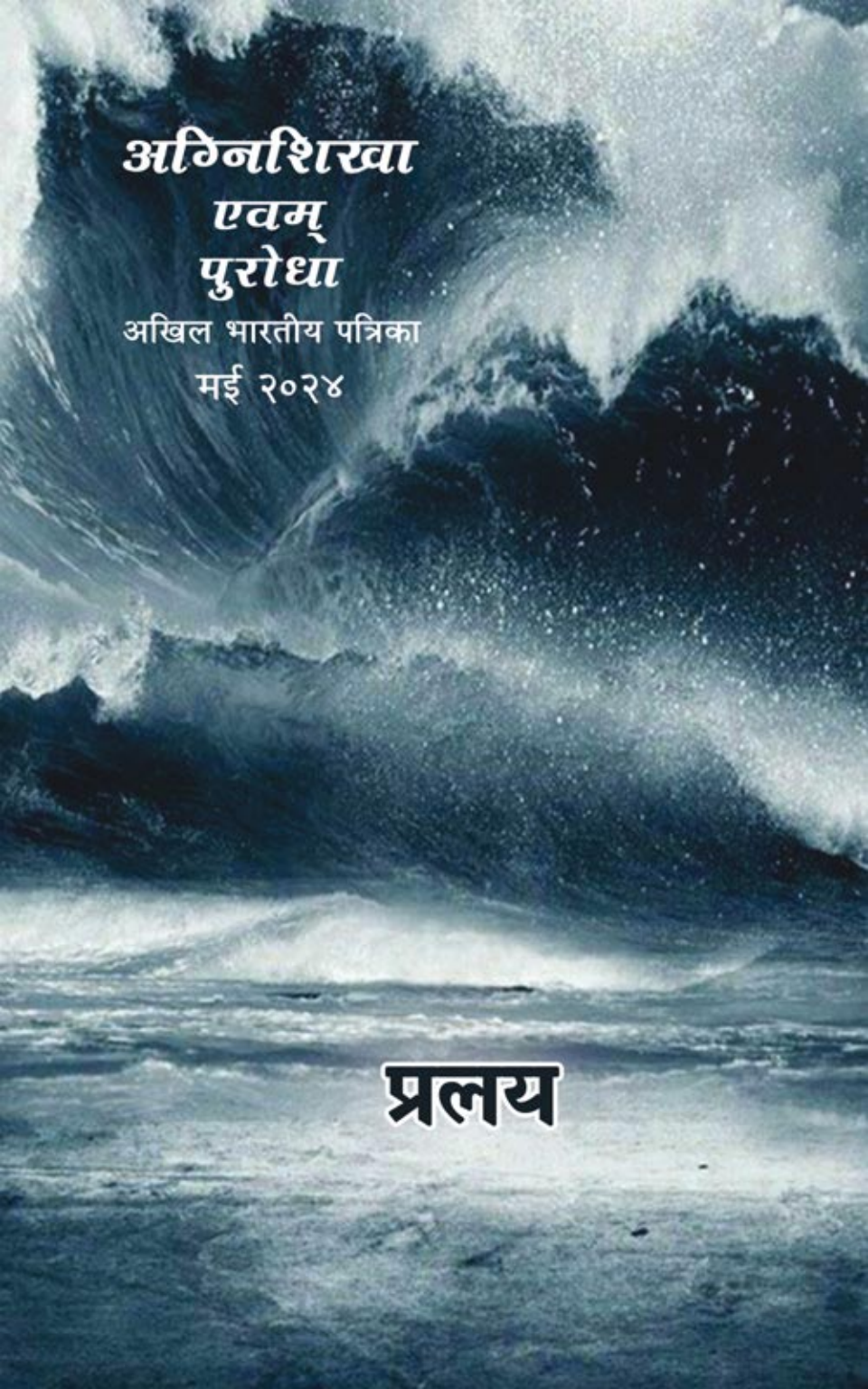
अग्निशिखा
एवम्
पुरोधा
अखिल भारतीय पत्रिका
मई २०२४
प्रलय

विषय-सूची

प्रलय
(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

प्रार्थना	३
अतीत	५
वर्तमान	१४

पुरोधा

दैनन्दिनी		३३
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : सचेतन बनना	नवजातजी	३५
शाश्वत ज्योति (४)	चित्रा सेन (अनु. वीणा)	३८
आलम	डॉ.तारा सिंह	४०
तुझे मिल गयी राह (कविता)	बालकृष्ण राव	४३
निष्ठा का मूल्य	अज्ञात	४४
'नयी कोंपलें' : आख़िर क्यों? (कविता)	स्मिता चतुर्वेदी	४५
सारे जहाँ की दौलत आ गयी थी	वन्दना	४६
झुंझुनू की सूचना		५०

क्षमा-याचना—अग्निशिखा एवम् पुरोधा के अप्रैल २०२४ अंक के आवरण पृष्ठ पर मार्च २०२४ छप गया है। इस भारी भूल के लिए भारी मन से क्षमाप्रार्थी हैं सम्पादिका।

पाठकों को हम यह याद दिला दें कि वैसे पुराने कलेवर की 'अग्निशिखा' का यह हमारा ५४वाँ वर्ष चल रहा है।

प्रार्थना

... आज सवेरे मेरी प्रार्थना तेरी ओर उठती है, हमेशा उसी अभीप्सा के साथ कि सभी तेरे प्रेम को जी सकें, तेरे प्रेम को ऐसी सामर्थ्य और प्रभावकारिता के साथ फैला सकें कि हमारे सम्पर्क से सभी पुष्ट, सुदृढ़, पुनरुज्जीवित और प्रकाशित अनुभव करें। जीवन को नीरोग करने की शक्ति प्राप्त करना, पीड़ा को शमित करना, शान्ति और अचञ्चल विश्वास को पैदा करना, सन्ताप को मिटा देना और उसके स्थान पर एक सच्चे सुख के भाव को लाना, ऐसे सुख को, जिसका मूल तेरे अन्दर है, जो कभी मुरझाता नहीं...। हे प्रभो, हे अद्‌भुत सखा, हे सर्वशक्तिमान् स्वामी, हमारी सारी सत्ता में प्रवेश कर, उसे तब तक रूपान्तरित करता चल जब तक कि हमारे अन्दर और हमारे द्वारा केवल तू ही जिये!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ५७

सम्पादकीय : इस युग के आरम्भ से ही प्रलय की भविष्यवाणी के बारे में चर्चाएँ चल रही हैं। साथ ही एक नवयुग अर्थात् सत्ययुग के आगमन तथा आविर्भाव के बारे में भी कहा जा रहा है। शायद इन दोनों बातों में आंशिक सत्य ज़रूर है, तभी तो ये मनुष्य की कल्पना में आ सकी हैं, लेकिन मनुष्य ने इन्हें समझा कम है। पुरातन जगत् सचमुच मरणासन्न है और नूतन जगत् आकार ले रहा है। इसका क्या अर्थ और क्या आशय है यही है हमारे इस अंक की विषय-वस्तु, जिसका शीर्षक है—प्रलय।

अपनी साधना के विषय में मेरा आशय यह था कि मैं साधना अपने लिए नहीं बल्कि पृथ्वी-चेतना के लिए, प्रकाश की प्राप्ति का पथ दिखाने के हेतु करता हूँ। परिणामतः, इसमें जो कुछ मैंने एक साध्य लक्ष्य के रूप में दिखाया है—अन्तर्विकास, रूपान्तर, नयी सामर्थ्यों की अभिव्यक्ति इत्यादि—वह किसी भी व्यक्ति के लिए कुछ भी महत्त्व का नहीं ऐसी बात नहीं। बल्कि इसका प्रयोजन है—व्यक्ति को जो कुछ करना है उसके लिए दिशाओं और मार्गों को खोल देना। इसमें बड़प्पन की मात्रा का प्रश्न उठता ही नहीं।

मई, १९३३ **श्रीअरविन्द**

अतीत

सातवीं सृष्टि तथा प्रलय

अन्ततः जब तक मृत्यु है, चीज़ों का अन्त हमेशा बुरा ही होता है।

केवल तभी जब मृत्यु पर विजय पा ली जायेगी, चीज़ों का अन्त बुरा न होगा... यानी, जब नूतन प्रगति करने के लिए 'अचेतना' में वापस जाना और आवश्यक न रहेगा।

विकास की समस्त प्रक्रिया, कम-से-कम पृथ्वी पर (मुझे मालूम नहीं कि दूसरे ग्रहों पर कैसा है) तो यही है। और शायद (मैं खगोल-शास्त्र के इतिहास के बारे में बहुत नहीं जानती) सृष्टि में भी यही होता है—क्या वे जानते हैं कि क्या भौतिक रूप से सृष्टि का विनाश होता है, क्या सृष्टि के अन्त का कोई इतिहास कहीं पाया गया है?... परम्पराएँ हमें बतलाती हैं कि एक विश्व का निर्माण होता है, फिर वह प्रलय में लील लिया जाता है, फिर एक और नूतन विश्व का निर्माण होता है; और उनके अनुसार, हमारी यह सातवीं सृष्टि है, और चूँकि यह सातवीं है, यह ऐसी है जो प्रलय में खींच नहीं ली जायेगी बल्कि पीछे हटे बिना वह निरन्तर प्रगति करती रहेगी। वस्तुतः, इसी कारण मानव सत्ता के अन्दर हमेशा बने रहने और बाधाहीन प्रगति करने की इच्छा सतत बनी रहती है—इसकी वजह यह है कि अब इसका समय आ गया है।

१३ नवम्बर १९६३ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

'जैसा तुम चाहो'

अधिकाधिक मुझे अब यह लग रहा है कि बस एक ही रास्ता है... *(हँसी)* इससे एक अच्छा चित्र बनता है : मन के ऊपर बैठना—बस मन के ऊपर जम कर बैठ जाओ : उससे कहो—चुप बैठो। बस यही एकमात्र रास्ता है।

तुम मन पर बैठ जाओ *(माँ हलकी-सी एक चपत लगाती हैं)* : चुप रहो।

अवचेतना में *पहले के* सभी "प्रलयों" की स्मृति बनी रहती है, और यही स्मृति यह आभास दिलाती है कि सभी कुछ विलीन, धराशायी हो जायेगा।

लेकिन अगर तुम चीज़ों को सच्चे प्रकाश में देखो तो बस अधिक

सुन्दर अभिव्यक्ति ही उजागर हो सकती है! तेओं ने मुझसे कहा था कि यह सातवीं और अन्तिम अभिव्यक्ति है। श्रीअरविन्द ने (मैंने उन्हें तेओं की बात बतायी थी) इस पर सहमति जतायी थी, क्योंकि उन्होंने कहा था, "यह सृष्टि अतिमानस के प्रति रूपान्तर देखेगी।" लेकिन अतिमानस तक पहुँचने के लिए मन को चुप होना पड़ेगा! और मुझे यह रूपक ऐसा लगता है *(हँसी)* मानों कोई बच्चा मन के सिर पर बैठा है! *(पैर हिलाते हुए बच्चे का संकेत)*, जो मन के सिर पर बैठा खेल रहा है! अगर मैं अब भी चित्र बना सकती तो मैं सचमुच कोई मज़ेदार चित्र बनाती। मन—यह विशाल पार्थिव मन *(माँ अपने गाल फुलाती हैं)*—जो अपने-आपको इतना महत्त्वपूर्ण और अनिवार्य समझता है, और फिर एक बच्चा जो उसके सिर पर बैठा है, पैर हिला-हिला कर खेल रहा है! कितना मज़ेदार है।

ओह मेरे बच्चे, हमारे अन्दर श्रद्धा नहीं होती, जिस क्षण श्रद्धा जागती है।...

हम कहते हैं, "हम दिव्य जीवन जीना चाहते हैं"—लेकिन हम उससे भय खाते हैं! जिस क्षण भय ग़ायब हो जाता है, हम सच्चे-निष्कपट बन जाते हैं... सचमुच, तब सब कुछ बदल जाता है।

हम कहते हैं, "अब हमारा इस जीवन से कोई लेना-देना नहीं," *(हँसी)* लेकिन हमारे अन्दर की कोई चीज़ इससे चिपकी ही रहती है!

हाँ!

कितना हास्यास्पद है।

हम अपने पुराने विचारों से चिपके रहते हैं, हमारे पुराने... इस पुराने संसार से जिसका विलुप्त होना अनिवार्य है—लेकिन हमारे साथ भय लगा रहता है!

जब कि भागवत बालक मन के सिर पर बैठा खेल रहा है!... कितना चाहती हूँ मैं कि इसका चित्र बना सकती, कितना अद्‌भुत है।

कितने बेवकूफ़ हैं हम, हम यहाँ तक कहते हैं *(माँ जुगुप्सा का-सा भाव दर्शाती हैं)*: भगवान् ग़लत हैं, "आपको चीज़ों को इस तरह नहीं करना चाहिये था!" यह हास्यास्पद है मेरे बच्चे!

(मौन)

मेरे लिए सर्वोत्तम उपचार (मेरा मतलब है सबसे आसान) है: जैसा

तुम चाहो—जैसा तुम चाहो, अपनी पूरी सच्चाई के साथ मैं तुम्हारे पास आया हूँ—जैसा तुम चाहो। और फिर—आती है समझ। तब तुम समझ जाते हो। लेकिन तुम मानसिक तरीक़े से नहीं समझते, यहाँ से नहीं, *(माँ अपना सिर छूती हैं) जैसा तुम चाहो।*

१२ अप्रैल १९७२ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

सत्य-सृजन

"... 'सत्य-सृजन' में विधान यह है कि प्रलय के बिना सतत उन्मीलन होता रहे।" (श्रीअरविन्द) यह सतत उन्मीलन क्या है?

मेरा ख़याल है कि हम इसके बारे में कई बार बातचीत कर चुके हैं। कहा गया है कि सृष्टि के सृजन की प्रक्रिया में, सृजन की क्रिया के बाद रक्षण की गति होती है और अन्त में विघटन या विनाश की गति होती है; और यह भी बहुत बार कहा गया है: "जो कुछ आरम्भ होता है वह समाप्त होता ही है," आदि, आदि।

वस्तुतः हमारे विश्व के इतिहास में एक के बाद एक छः काल आ चुके हैं जो सृष्टि से शुरू हुए, रक्षण की शक्ति द्वारा टिके, बढ़े और विघटन, विनाश द्वारा समाप्त होकर फिर से 'आदि स्रोत' की ओर चले गये, इसी को प्रलय कहते हैं; और इसी के कारण यह मान्यता है। लेकिन यह कहा गया है कि सातवीं सृष्टि उत्तरोत्तर प्रगति करने वाली सृष्टि होगी, यानी, सर्जन के आरम्भ-बिन्दु के बाद केवल रक्षण ही नहीं आयेगा, बल्कि क्रमशः अभिव्यक्ति आयेगी जो भगवान् को अधिकाधिक पूर्ण रूप में प्रकट करेगी, ताकि विघटन और 'आदि स्रोत' की ओर लौटने की ज़रूरत ही न रह जाये। और इसकी घोषणा की गयी है कि जिस काल में हम हैं वह ठीक सातवाँ है, अर्थात्, जिसका अन्त प्रलय, 'आदि स्रोत' की ओर लौटने, विनाश और विलोप से न होगा, बल्कि उसकी जगह ले लेगी सतत प्रगति, क्योंकि यह अपनी सृष्टि में भागवत 'मूल स्रोत' का अधिकाधिक उन्मीलन होगा।

श्रीअरविन्द यही कहते हैं। वे सतत उन्मीलन की बात करते हैं, यानी, भगवान् अधिकाधिक पूर्ण रूप से, उत्तरोत्तर सम्पूर्ण भाव से प्रगतिशील सृष्टि

में अभिव्यक्त होते हैं। इस उत्तरोत्तर प्रगति का स्वभाव ही 'आदि स्रोत' तक लौटने को, विनाश को अनावश्यक बना देता है। जो कुछ प्रगति नहीं करता, ग़ायब हो जाता है, और यही कारण है कि भौतिक शरीर मरते हैं, इसका कारण यह है कि वे प्रगतिशील नहीं हैं; वे अमुक समय तक प्रगति करते हैं, फिर वहाँ जाकर रुक जाते हैं और बहुधा कुछ समय के लिए वहाँ पर स्थिर रहते हैं, और फिर उनका ह्रास शुरू हो जाता है, और वे विलुप्त हो जाते हैं। यह इस कारण होता है कि भौतिक शरीर, भौतिक पदार्थ अपनी वर्तमान अवस्था में इतना लचीला नहीं है कि सतत प्रगति कर सके। लेकिन यह असम्भव नहीं है कि उसे इतना पर्याप्त लचीला बनाया जा सके कि वह शरीर को इतना पूर्ण बना दे कि फिर उसे विघटन, अर्थात्, मृत्यु की आवश्यकता न रहे।

केवल, यह उपलब्धि 'अतिमानस' के अवतरण के बिना नहीं हो सकती। अभी तक जितनी भी शक्तियाँ अभिव्यक्त हुई हैं, उनसे यह उच्चतर है। यह शरीर को ऐसा लचीलापन प्रदान करेगी कि वह सतत प्रगति कर पायेगा, अर्थात्, उन्मीलन में दिव्य गति का अनुसरण कर सकेगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. २२८-२९

वस्तुएँ अपने स्थान पर नहीं हैं

वस्तुएँ अपने स्थान पर नहीं हैं, इस विचार को तो मैंने उसी समय समझ लिया था जब मैं छोटी-सी बच्ची थी। पर इसकी व्याख्या केवल बाद में उन्हीं व्यक्ति से मिली जिनसे मैंने गुह्यविद्या सीखी थी, क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति की अपनी प्रणाली में उन्होंने विभिन्न विश्वों के क्रमिक प्रलयों की व्याख्या की थी और कहा था कि प्रत्येक विश्व उस परम सत्ता का एक पक्ष है जो अपने-आपको अभिव्यक्त कर रही है, प्रत्येक विश्व परम सत्ता के एक पक्ष पर आधारित है और फिर बारी-बारी से सभी विश्व भगवान् की ओर लौट जाते हैं। उन्होंने उन सभी पक्षों को, जो क्रम से अभिव्यक्त हो रहे थे गिनकर बड़े तर्कपूर्ण तरीक़े से बताया था! वह असाधारण था—मैंने यह सब कहीं लिख रखा है, याद नहीं कहाँ। और उन्होंने यह भी कहा था कि इस बार यह—मुझे याद नहीं, क्रम में इसकी संख्या क्या थी—एक ऐसा विश्व होगा जो वापस नहीं लौटेगा और एक अधिकाधिक उन्नत

अभिव्यक्ति का अनुसरण करेगा जो प्रायः अनिश्चित काल तक चलेगी। वर्तमान विश्व एक सन्तुलित विश्व है—यह स्थिर अवस्था में नहीं बल्कि उत्तरोत्तर सन्तुलित होने की अवस्था में है—दूसरे शब्दों में, यहाँ प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर है, प्रत्येक स्पन्दन, प्रत्येक क्रिया अपने स्थान पर है। और व्यक्ति जितना अधिक निम्न स्तर पर आता है उतना ही अधिक उसे प्रत्येक रूप, प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक वस्तु, समष्टि के सम्बन्ध से, अपने स्थान पर दिखायी देती है।

यह सब मुझे बड़ा मनोरञ्जक लगा, क्योंकि बाद में श्रीअरविन्द ने भी यही बात कही है कि यहाँ ऐसी कोई चीज़ नहीं है जो बुरी हो, केवल वस्तुएँ अपने स्थान पर नहीं हैं—देश में ही नहीं, काल में भी, वस्तुतः जगतों, नक्षत्रों आदि में भी; प्रत्येक वस्तु का अपना ठीक स्थान है। और जब प्रत्येक वस्तु, बृहदाकार वस्तु से लेकर अत्यधिक सूक्ष्म वस्तु तक, ठीक अपने स्थान पर होगी तभी समष्टि सर्वोच्च सत्ता को उत्तरोत्तर अभिव्यक्त करेगी। तब अपने-आपको दोबारा प्रकट करने के लिए उसे पीछे लौटने या हटने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। इसी आधार पर श्रीअरविन्द ने यह कहा है कि इसी सृष्टि में, इसी विश्व में एक दिव्य जगत् की पूर्णता अभिव्यक्त हो सकती है—इसे ही श्रीअरविन्द अतिमानसिक पूर्णता कहते हैं। सन्तुलन इस सृष्टि का मूल धर्म है और इसीलिए अभिव्यक्ति में ही पूर्णता प्राप्त की जा सकती है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. १२१-२२

परम 'चेतना' का सतत उद्घाटन

विश्व नित्य-गतिशील है और यह परम 'चेतना' का सतत उद्घाटन है। अतएव जो कुछ घटित होता है वह सब जो कुछ उससे पहले घटित हो चुका है उससे प्रसीमित है। विश्व वही बना रहता है जो कि वह है क्योंकि जिससे यह बना हुआ है उसके कारण, और जो कुछ यह अब तक रहा है वह, जो कुछ यह पहले था उसका परिणाम है। और यह जो कुछ होगा...जो कुछ यह है उसी का फल होगा!

क्या विश्व का उद्घाटन लगातार होता रहता है या यह कहीं जाकर

रुक जाता है? वह कौन-सी चीज़ है जो हमें प्रारम्भ का, प्रारम्भ करने के निश्चय का आभास प्रदान करती है?

प्रारम्भ करने का निर्णय भला कहाँ से आता है?... *(हँसते हुए)* सम्भवतः 'परम' से, मैं नहीं जानती! ऐसा हो सकता है कि एक दिन 'उन्होंने' निश्चय किया कि हम लोगों के सामने जो विश्व है उस प्रकार का एक विश्व उत्पन्न हो और 'उन्होंने' अपने-आपको विषयीभूत बनाना प्रारम्भ किया जिसमें कि एक विश्व जन्म ले।

इस विश्व का प्रत्येक तत्त्व शाश्वत है क्योंकि विश्व स्वयं 'शाश्वत' है। अब, 'शाश्वत' के अन्दर किसी "प्रारम्भ" की बात कहना कठिन है। स्पष्ट ही, 'यह' सर्वदा रहा है और सर्वदा बना रहेगा। केवल, उदाहरण के लिए मान लो (यह एक रूपक है, याद रखो, मुझसे ऐसी बातें न कहलवाओ जो मैं नहीं कहती), एक गोला ले लो जो अनगिनत अतिसूक्ष्म वस्तुओं से भरा है। यदि तुम इन सब तत्त्वों का सम्बन्ध बदल दो तो, उनकी संख्या इतनी बड़ी है, सम्बन्धों की सम्भावनाएँ इतनी अधिक हैं कि तुम आसानी से एक अनन्त की बात कह सकते हो, यद्यपि दार्शनिक दृष्टिकोण से वह अनन्त नहीं है; फिर भी वर्णनात्मक दृष्टि से हम कह सकते हैं कि वह अनन्त है। प्रत्येक तत्त्व शाश्वत है। सभी सम्मिश्रण अनन्त हैं, पर वही सम्मिश्रण कभी दोबारा संघटित नहीं हो सकता। इस तरह विश्व नित्य नया होता रहता है और फिर भी वह शाश्वत रूप से वही बना रहता है।

परम्परा के अनुसार यह कहा जाता है...

हाँ, हाँ, परन्तु यह परम्परा का प्रश्न नहीं है। कुछ लोग ऐसे हैं जो प्रलय की बात कहते हैं, मैं जानती हूँ, परन्तु उसका अर्थ बस यह है (मुझे क्षमा करना, हमें थोड़ा हलके रूप में ही बोलना चाहिये, नहीं तो बात असह्य हो जाती है) कि परात्पर भगवान् ने जिस प्रकार का विश्व बनाया है उससे शायद एक दिन 'वे' क्लान्त, असन्तुष्ट हो सकते हैं और दूसरा विश्व बनाने की इच्छा कर सकते हैं! तब, जैसे कि समस्त विश्व 'उन्हीं' का रूप है, 'वे' प्रत्येक चीज़ को 'अपने' अन्दर वापस ले लेते हैं और उसे फिर

बाहर ले आते हैं! यही चीज़ है जिसे लोग "प्रलय" कहते हैं, परन्तु इससे कुछ भी नहीं बदलता; विश्व के सभी तत्त्व शाश्वत हैं और शाश्वत रूप से वस्तुओं के सम्मिश्रण विभिन्न बने रहेंगे।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. २५९-६०

प्रगतिशील सन्तुलन

पहले छः (प्रलय), हाँ, यह सच है। क्रम भी दिया गया है। वह क्रम जिसमें... क्योंकि प्रत्येक सृष्टि अमुक गुणों पर खड़ी की गयी है, और इन गुणों का क्रम भी दिया गया है। मैं उन्हें जानती हूँ, मैंने उन्हें कहीं लिख रखा है। लेकिन अभी वह मेरे पास नहीं है। इसलिए मैं तुम्हें बता नहीं सकती, भूल हो जायेगी। लेकिन किसी दिन वह काग़ज़ ला सकती हूँ जिस पर यह लिखा हुआ है। मैं सिर्फ़ इतना ही जानती हूँ कि इस बार सृष्टि सन्तुलन पर आधारित है। लेकिन एक विशेष सन्तुलन पर, क्योंकि यह प्रगतिशील सन्तुलन है। यह गतिहीन सन्तुलन नहीं है। वर्तमान सृष्टि का गुण **सन्तुलन** है; इसलिए कहा जाता है कि इस सृष्टि में, अगर प्रत्येक वस्तु ठीक अपने स्थान पर हो, पूर्ण सन्तुलन में हो तो बस, कहीं कोई अशुभ न रहेगा। अशुभ क्या है? वह है चीज़ों का सन्तुलन में न होना! ऐसी कोई चीज़ नहीं जो अपने-आपमें बुरी हो, केवल उसकी स्थिति ग़लत है, वह सच्ची स्थिति में नहीं है।

असुरों की नियति

चार प्रधान असुर थे। उन चार में से दो तो परिवर्तित हो चुके हैं। वे भागवत कार्य में भाग ले रहे हैं। लेकिन बाक़ी दो अब तक अच्छी तरह डटे हुए हैं। देखते हैं आख़िर कब तक डटे रहेंगे? इसलिए उनके सामने चुनाव है : परिवर्तित होकर, यानी, अपनी सही जगह लेकर, पूर्ण समग्रता में सन्तुलित रहना अथवा विलीन हो जाना, यानी, अपने 'मूल' में पुनः समा जाना।

उनमें से एक ऐसा है जिसने लगभग परिवर्तित होने की कोशिश तो की है लेकिन सफल नहीं हो पाया। जब उसे कोशिश करनी पड़ी तो यह उसे बहुत अप्रिय लगा। इसलिए उसने इसे किसी और समय के लिए

स्थगित कर दिया।

दूसरा तो कोशिश करने से भी इन्कार करता है। जगत् में उसने अपने लिए एक बहुत, बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान सुरक्षित कर लिया है, क्योंकि अनभिज्ञ लोग उसे "राष्ट्रों का स्वामी" कहते हैं। वास्तव में अभी कुछ देर पहले मैं उन शक्तियों की बात कर रही थी जो पृथ्वी पर शासन करती हैं और अपने शासन को बिलकुल नहीं छोड़ना चाहतीं। वे उससे पूरी तरह सन्तुष्ट हैं—यह बात नहीं है कि वह यह न जानता हो कि एक दिन तो उसका अन्त आयेगा ज़रूर, परन्तु फिर भी वह यथासम्भव उसे स्थगित करता जाता है।

लेकिन चूँकि उसके परिमाण मानवीय नहीं होते, इसलिए यह काफ़ी लम्बे अरसे तक इस तरह चला सकता है, है न? वे तब तक बने रहेंगे जब तक उन्हें धरा पर कहीं कोई ऐसी मानवीय चेतना मिलती रहेगी जो उनके प्रभाव का प्रत्युत्तर देने को तैयार हो। इससे तुम समस्या की कल्पना कर सकते हो! और फिर, वे व्यष्टि के द्वारा नहीं, बल्कि राष्ट्रों के द्वारा अपने प्रभाव को बनाये रखते हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. १९६-९७

बढ़ती हुई पूर्णता

"दिव्य जीवन-प्रणाली" से आपका क्या तात्पर्य है?

हम सर्वदा उस सबको "दिव्य" कहते हैं जो हम हैं तो नहीं, पर होना चाहते हैं। जो कुछ हमें अनन्त रूप में श्रेष्ठ प्रतीत होता है, हमने जो कुछ किया है केवल उसकी तुलना में ही नहीं, बल्कि उन सबकी तुलना में भी जो हम अनुभव करते हैं कि हम कर सकते हैं, जो कुछ हमारी परिकल्पना तथा हमारी वर्तमान सम्भावनाओं, दोनों का अतिक्रमण करता है, उस सबको हम "दिव्य" कहते हैं।

मैं यह बात मज़ाक के रूप में नहीं कह रही, बल्कि इस कारण कह रही हूँ कि मुझे पूरा विश्वास है कि यदि हम कुछ हज़ार वर्ष पीछे चले जायें, जब लोग भगवान् की बात करते थे—यदि कभी वे भगवान् की बात करते थे जैसा कि मैं विश्वास करती हूँ—तो वे शायद उस अवस्था की चर्चा

करते थे जो 'अधिमानस' के देवताओं की अवस्था से मिलती-जुलती थी; और अब 'अधिमानस' के उन देवताओं की जीवन-विधि जिन्होंने, स्पष्ट ही, पृथ्वी पर बहुत दीर्घकाल तक राज्य किया है और यहाँ बहुत-सी चीज़ें निर्मित की हैं, आज हम जिसकी कल्पना 'अतिमानस' के रूप में करते हैं उसके सामने हमें बहुत अधिक तुच्छ प्रतीत होती है। और यह 'अतिमानस', जिसे हम, निश्चित रूप से, भगवान् कहते हैं और पृथ्वी पर उतार लाने के लिए प्रयत्नशील हैं, सम्भवतः आज से कुछ हज़ार या लाख वर्ष बाद हमें ऐसा ही लगेगा जैसा कि आज 'अधिमानस' लग रहा है।

और मुझे पूरा विश्वास है कि अभिव्यक्ति के अन्दर, अर्थात् 'अपनी' आत्म-अभिव्यक्ति के अन्दर भगवान् निरन्तर वर्धित हो रहे हैं। अभिव्यक्ति से बाहर वह कुछ ऐसी चीज़ है जिसकी हम कल्पना नहीं कर सकते; परन्तु जैसे ही वे इस प्रकार की शाश्वत सम्भूति के अन्दर अभिव्यक्त होते हैं, 'वे' क्रमशः अधिकाधिक 'अपने-आपको' प्रकट करते हैं, मानों वे अन्त के लिए अपनी 'सत्ता' में सर्वाधिक सुन्दर चीज़ों को बचा कर रखते हों।

चूँकि धीरे-धीरे जगत् प्रगति करता जाता है, जो कुछ वे जगत् में प्रकट करते हैं वह ऐसी चीज़ें बनता जाता है जिन्हें हम अधिकाधिक दिव्य कह सकते हैं।

अतएव, श्रीअरविन्द ने उन लोगों को समझाने के लिए 'अतिमानस' शब्द का प्रयोग किया है जो बाहरी और विकसनशील चेतना में हैं और जिन्हें उस तरीक़े का कुछ बोध है जिससे पार्थिव जगत् विकसित हुआ है—उनको यह समझाने के लिए कि यह वस्तु, जो बहुत अधिक महान् होगी, और मानव सृष्टि से, मनुष्य से, जिसे वे सर्वदा मनोमय प्राणी कहते हैं, अधिक श्रेष्ठ होगी—यह वस्तु जो आने वाली है मनुष्य से बहुत बढ़-चढ़ कर और ज़्यादा अच्छी होगी; और इसलिए वे इसे अतिमानसिक कहते हैं ताकि लोग उन्हें समझ सकें। परन्तु हम साथ ही यह भी कह सकते हैं कि यह वस्तु उस सबसे अधिक दिव्य है जो पहले अभिव्यक्त हो चुका है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ४०-४१

अतिमानसिक सत्य में सभी मिथ्यात्व विलीन हो जायेंगे।

श्रीमाँ

संकट

क्योंकि, यह (आधुनिक) आदर्श, भौतिक और आर्थिक जीवन पर यह सचेतन ज़ोर वस्तुतः मनुष्य की पहली स्थिति, उसकी प्रारम्भिक बर्बर स्थिति और प्राण और जड़ में उसकी तल्लीनता का सभ्य प्रत्यावर्तन था, आध्यात्मिक अधोगति थी जिसे विकसित मानवजाति का मन और पूरी तरह विकसित भौतिक विज्ञान के साधन प्राप्त थे। समग्र के अन्दर, मानव जीवन की समग्र जटिलता में आर्थिक तथा भौतिक जीवन को पूर्ण बनाने के इस ज़ोर का एक तत्त्व के रूप में अपना स्थान है, लेकिन एकमात्र या प्रमुख ज़ोर के रूप में वह मानवजाति के लिए, स्वयं विकास के लिए संकटपूर्ण है। पहला संकट है पुरानी प्राणिक और भौतिक आदिम बर्बरता का सभ्य रूप में लौट आना, भौतिक विज्ञान ने हमारे हाथ में जो साधन सौंपे हैं उनके कारण यह भय तो दूर हो जाता है कि अधिक बलवान् आदिम जातियाँ अशक्त सभ्यता का उच्छेदन या विनाश कर दें, लेकिन संकट यह है कि स्वयं हमारे अन्दर सभ्य मनुष्य में बर्बर फिर से न उठ खड़ा हो—यही संकट है जिसे हम चारों ओर देखते हैं। और यह होना अवश्यम्भावी है यदि हमारे अन्दर के प्राणिक और भौतिक मनुष्य को नियन्त्रित करने और ऊपर उठाने वाले कोई उच्च और सबल मानसिक और नैतिक आदर्श न हों और कोई ऐसा आध्यात्मिक आदर्श न हो जो उसे अपने-आपसे अपनी आन्तरिक सत्ता में मुक्त करे। अगर इस पुनःपतन से बचा भी जाये तो भी एक और संकट है—क्योंकि एक और सम्भव परिणाम है विकास की प्रेरणा का समापन, किसी आदर्श या दृष्टिकोण के बिना स्थायी और आरामदेह यान्त्रिक सामाजिक जीवन में जड़ीभूत हो जाना। अपने-आपमें तर्क-बुद्धि जाति को लम्बे समय तक प्रगति में बनाये नहीं रख सकती, वह ऐसा तभी कर सकती है जब वह एक ओर प्राण और शरीर तथा दूसरी ओर मनुष्य के अन्दर की उच्चतर और महत्तर वस्तु के बीच मध्यस्थ हो। क्योंकि एक बार मन को उपलब्ध कर लेने के बाद केवल आन्तरिक आध्यात्मिक आवश्यकता, अभी तक उसमें जो अनुपलब्ध है उसकी प्रेरणा ही विकास के दबाव और आध्यात्मिक प्रेरणा को बनाये रख सकती है। उसे त्यागने पर मनुष्य को या तो फिर से गिर कर पूरी तरह दोबारा शुरू करना होगा या विकास की असफलता के रूप में अपने से पहले के जीवन के

उन रूपों की तरह ग़ायब हो जाना होगा जो विकास की प्रेरणा को बनाये रखने या उसे चलाने में असमर्थ रहे। अपनी अच्छी-से-अच्छी अवस्था में वह अन्य पशु-जातियों की तरह किसी प्रकार की मध्यवर्ती प्ररूपी पूर्णता में बन्द हो जायेगा, जब कि प्रकृति उसके परे एक महत्तर सृष्टि की ओर चलती चली जायेगी।

CWSA खण्ड २२, पृ. १०९०

विकास का संकट

इस समय मानवजाति विकास के संकट में से गुज़र रही है जिसमें उसकी नियति का चुनाव छिपा है; क्योंकि एक ऐसी अवस्था पहुँच गयी है जहाँ मानव मन अमुक दिशाओं में बहुत अधिक विकसित हो चुका है जब कि अन्य दिशाओं में वह अवरुद्ध और भ्रमित खड़ा है और अपना मार्ग नहीं पा सकता। मनुष्य के सदा सक्रिय मन और प्राण-इच्छा ने बाहरी जीवन का एक ढाँचा खड़ा कर दिया है और वह ढाँचा इतना विशाल, इतना जटिल है कि उसकी व्यवस्था करना असम्भव है। यह उसने बनाया है अपने मानसिक, प्राणिक और भौतिक दावों और प्रेरणाओं की सेवा के लिए, यह एक जटिल राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासकीय, आर्थिक, सांस्कृतिक यन्त्र है, उसके बौद्धिक, संवेदनात्मक, सौन्दर्यग्राही और भौतिक सन्तोष के लिए एक संगठित सामूहिक साधन है। मनुष्य ने एक ऐसे सभ्यता-तन्त्र की रचना की है जो उसकी सीमित मानसिक क्षमता और समझ के लिए तथा उसकी और भी अधिक सीमित आध्यात्मिक और नैतिक क्षमता के लिए उस तन्त्र के उपयोग और व्यवस्था की दृष्टि से बहुत ज़्यादा बड़ा है। वह भूलें करने वाले उसके अहं और उसकी क्षुधाओं के लिए अत्यधिक भयानक सेवक बन गया है। क्योंकि उसकी चेतना की सतह पर अभी तक कोई महत्तर द्रष्टा-मन, ज्ञान की कोई अन्तर्भासात्मक आत्मा नहीं आयी है जो जीवन की इस आधारभूत पूर्णता को उसका अतिक्रमण करने वाली किसी वस्तु के मुक्त विकास के लिए उपयुक्त परिस्थिति बना सके। जीवन के साधनों की यह नयी परिपूर्णता मनुष्य को उसकी आर्थिक और भौतिक आवश्यकताओं के लगातार अतृप्त दबाव से छुड़ा सकने की अपनी सामर्थ्य के कारण, भौतिक जीवन से ऊपर उठे हुए अन्य और महत्तर लक्ष्यों की

पूरी खोज का अवसर हो सकती है; उच्चतर सत्य, शुभ और सौन्दर्य के अन्वेषण, एक महत्तर और अधिक दिव्य आत्मा की खोज का अवसर हो सकती है जो हस्तक्षेप करके जीवन का उपयोग सत्ता की उच्चतर पूर्णता के लिए करे, लेकिन इसकी जगह उसका उपयोग नयी-नयी माँगों को बढ़ाने और सामूहिक अहंकार के आक्रामक विस्तार के लिए हो रहा है। साथ ही, भौतिक विज्ञान ने वैश्व शक्ति की बहुत-सी क्षमताएँ उसके हाथों में सौंप दी हैं और मानवजाति के जीवन को जड़-भौतिक रूप में एक बना दिया है; लेकिन जो इस वैश्व शक्ति का उपयोग करता है वह छोटा-सा मानव वैयक्तिक या सामूहिक अहंकार है जिसके ज्ञान के प्रकाश या गतिविधियों में कुछ भी वैश्व नहीं है, कोई आन्तरिक बोध या शक्ति नहीं है जो मानव जगत् के इस भौतिक रूप से नज़दीक खिंच आने में एक सच्चा जीवन-ऐक्य, मानसिक ऐक्य या आध्यात्मिक ऐक्य की रचना कर सके। वहाँ जो कुछ है वह है संघर्षरत मानसिक भावों की अस्त-व्यस्तता, भौतिक और प्राणिक चाहों और आवश्यकताओं की वैयक्तिक और सामूहिक प्रेरणाएँ, प्राणिक दावे और कामनाएँ, अज्ञानमयी जीवन-प्रेरणा के आवेग, व्यक्तियों, वर्गों, राष्ट्रों की जीवन-सन्तुष्टि के लिए क्षुधाएँ और पुकारें, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक धारणाओं और रामबाणों के प्रचुर कुकुरमुत्ते, नारों और सर्वरोगहर औषधियों की भीड़-भाड़ और रेल-पेल जिनके लिए मनुष्य अत्याचार करने और अत्याचार सहने, मरने-मारने के लिए तैयार रहता है, उन्हें अपने हाथ में आये हुए विशाल और अतिकराल साधनों से किसी-न-किसी तरह आरोपित करने को तैयार रहता है और यह सब वह इस विश्वास के साथ करता है कि उसके लिए यही किसी आदर्श तक पहुँचने का रास्ता है। निश्चित रूप से मानव मन और प्राण का विकास बढ़ते हुए वैश्व भाव की ओर ले जायेगा; लेकिन अहंकार तथा खण्डित करने और विभक्त करने वाले मन के आधार पर वैश्व भाव की ओर यह उन्मीलन केवल असंगत विचारों और अन्तर्वेगों के विशाल प्रदूषण, विपुल शक्तियों और कामनाओं का उभार, एक विशालतर जीवन की आत्मसात् न हुई और आपस में घुली-मिली मानसिक, प्राणिक और भौतिक सामग्री का अस्त-व्यस्त समूह ही रच सकता है और चूँकि वह सामग्री अध्यात्म-सत्ता के सर्जनशील और सामञ्जस्यकारी प्रकाश द्वारा ऊपर उठायी हुई नहीं होगी, वह विश्वव्यापी अस्त-व्यस्तता

और असंगति में लथपथ होगी जिसमें से विशालतर सामञ्जस्यपूर्ण जीवन को बनाना असम्भव होगा।

CWSA खण्ड २२, पृ. १०८९-९१

एक निर्णायक मोड़

आख़िर सारी समस्या यह जानने की है कि मानवता शुद्ध सोने की अवस्था में पहुँच गयी है या अब भी इसे कुठाली में परखने की ज़रूरत है।

एक चीज़ स्पष्ट है कि मानवता अभी तक शुद्ध सोना नहीं बनी है, यह स्पष्ट और निश्चित है।

परन्तु संसार के इतिहास में कुछ ऐसी बात हो गयी है जो यह आशा बँधाती है कि मानवता में कुछ गिने-चुने, थोड़े-से व्यक्ति शुद्ध सोने में बदलने के लिए तैयार हैं और ये बिना हिंसा के शक्ति को, बिना विनाश के वीरता को और बिना विध्वंस के साहस को अभिव्यक्त कर सकेंगे।

ठीक अगले ही परिच्छेद में श्रीअरविन्द इसका उत्तर देते हैं: "यदि मनुष्य एक बार आध्यात्मिक होने के लिए सहमत हो सके।" यदि मनुष्य आध्यात्मिक होने के लिए बस, *सहमत हो जाये*... सहमत हो जाये।[१]

उसके अन्दर की कोई चीज़ इसे चाहती है, इसके लिए अभीप्सा करती है, परन्तु बाक़ी सारी सत्ता इन्कार करती है, वह-की-वही बनी रहना चाहती है: एक मिश्रित धातु, जिसे भट्टी में डालने की ज़रूरत है।

हम इस समय फिर एक बार पृथ्वी के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ पर हैं। सब ओर से लोग मुझसे पूछ रहे हैं: "अब क्या होने वाला है?" हर जगह तीव्र व्यथा, प्रत्याशा और भय की स्थिति है। "अब क्या होने वाला है?..." इसका उत्तर, बस, एक ही है: "यदि मनुष्य आध्यात्मिक होने के लिए बस, सहमत हो जाता।"

शायद इतना पर्याप्त हो कि कुछ व्यक्ति शुद्ध सोना बन जायें, क्योंकि यह उदाहरण घटनाचक्र को बदलने के लिए काफी होगा...। यह आवश्यकता बहुत प्रबल रूप में हमारे सामने है।

[१] "सब कुछ बदल जाये यदि मनुष्य एक बार आध्यात्मिक होने के लिए सहमत हो जाता; परन्तु उसकी मानसिक, प्राणिक और भौतिक प्रकृति उच्चतर विधान के प्रति विद्रोह करती है। वह अपनी अपूर्णताओं से प्यार करता है।"

वह साहस और वह वीरता, जिसकी भगवान् हमसे अपेक्षा रखते हैं, उसका उपयोग हम अपनी कठिनाइयों, अपूर्णताओं और मलिनताओं के विरुद्ध लड़ने में क्यों न करें? हम आन्तरिक शुद्धि की भट्टी का सामना वीरतापूर्वक क्यों न करें ताकि फिर एक बार उस भयानक और विकराल विनाश में से गुज़रने की आवश्यकता ही न पड़े जो सारी सभ्यता को अन्धकार में डुबो देगा।

यही समस्या आज हमारे सामने है। हममें से प्रत्येक को इसे अपने ही तरीक़े से हल करना है।

इस समय मैं उन प्रश्नों का उत्तर दे रही हूँ जो मुझसे पूछे गये हैं और मेरा उत्तर वही है जो श्रीअरविन्द का है : यदि मनुष्य एक बार आध्यात्मिक होने के लिए सहमत हो सके...।

और इसके साथ मैं एक बात और जोड़ती हूँ : समय दबाव डाल रहा है... मानवीय दृष्टिकोण से।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ८१-८३

उषा के पहले का अन्धकार

मुझे भय है कि तुम जो अपनी चिट्ठियों में उन लोगों की दुःखद अवस्था का वर्णन कर रहे हो जो आज की दुनिया की परिस्थिति देख कर विलाप कर रहे हैं, उन्हें मैं कोई दिलासा नहीं दे पाऊँगा। चीज़ें बुरी **हैं**, बदतर हो रही हैं, और किसी भी समय, अगर ऐसा सम्भव हो तो बुरी-से-बुरी, एकदम से बुरी हो सकती हैं—और वर्तमान विक्षुब्ध जगत् में ऐसा लगता है कि कोई भी विरोधाभास—वह कैसा भी क्यों न हो—सम्भव है। सबके लिए अभी सबसे अच्छी चीज़ है यह जानना कि यह सब ज़रूरी था क्योंकि कुछ सम्भावनाओं को उभरना ही था और अगर एक नये और बेहतर जगत् को आना ही है तो इन सब विरोधों का सामना करना आवश्यक है, इन सम्भावनाओं को बाद के लिए टाला नहीं जा सकता। यह योग की तरह है जिसमें सत्ता में स्थित सक्रिय या निष्क्रिय चीज़ों को प्रकाश के सम्मुख लाना ही होता है ताकि विरोधियों को धर पकड़ कर बाहर फेंका जा सके, अतल गहराइयों से जगा कर शुद्ध और पवित्र बनाया जा सके। और वे लोग वह कहावत भी याद रख सकते हैं कि उषा के पहले का अन्धकार सबसे घना

होता है और यह भी कि उषा का आना अवश्यम्भावी है। लेकिन उन्हें यह भी याद रखना चाहिये कि जिस नये जगत् के आगमन की हम बाट जोह रहे हैं उसकी बनावट इस पुराने जगत् के जैसी नहीं होगी या वह केवल अपनी बानगी या प्रतिरूप में ही भिन्न नहीं होगा, बल्कि उसे किसी दूसरे तरीक़े से ही प्रकट होना होगा, बाहर से नहीं बल्कि अन्दर से बाहर आना होगा—तो सबसे अच्छा तरीक़ा है कि बाहर घट रही शोचनीय चीज़ों में तल्लीन न रह कर व्यक्ति को अपने साथ लगे रहना चाहिये, यानी अपने अन्दर विकसित होना चाहिये ताकि वह नवीन जगत् के लिए प्रस्तुत हो सके, वह जगत् चाहे जैसा रूप लेकर क्यों न प्रकट हो।

CWSA खण्ड ३१, पृ. ६९१

महान् प्रलय

(प्रलय के सम्बन्ध में हुई अपनी एक अनुभूति माँ ने सुनायी)

कल रात ठीक दस से ग्यारह के बीच कुछ रुचिकर घटा। मैं एक तरह की गाड़ी में बैठी थी, मैंने उस गाड़ी पर ध्यान नहीं दिया लेकिन मैं उसमें थी। मेरे सामने की सीट पर बैठा कोई उसे चला रहा था, हालाँकि मैं केवल उसकी पीठ ही देख सकती थी; वह कौन है जो चला रहा है इस पर मैंने किसी तरह का कोई ध्यान तक नहीं दिया—उसका तो वह काम था।

ऐसा लगा मानों विनाश के दरवाज़े भरभरा कर पूरे-के-पूरे खुल गये—बाढ़, समुद्र के आकार की बाढ़ें इतनी तेज़ी से चली आ रही थीं, कहीं अन्दर गिर रही थीं... क्या पृथ्वी पर? एक प्रचण्ड प्रवाह उन्मादी गति और अदम्य शक्ति के साथ नीचे दौड़ा चला आ रहा था। वह खारा पानी लग रहा था—पारदर्शक नहीं था, बल्कि खारा दीख रहा था। और मुझे पानी के पहुँचने के पहले एक स्थल पर पहुँचना था। अगर पानी मुझसे पहले पहुँच जाता तो फिर कुछ नहीं किया जा सकता था। जब कि अगर मैं पहुँच जाती (मैं 'मैं' कह रही हूँ, लेकिन मैं इस शरीर में नहीं थी), अगर मैं पानी के पहुँचने के पहले उस पार पहुँच जाती तो पूरी तरह से सुरक्षित होती; और उस सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाने पर मुझे पीछे छूटे व्यक्तियों की मदद करने का अवसर प्राप्त हो जाता।

और यह यान बाढ़ से ज़्यादा तेज़ी से आगे बढ़ रहा था (मैंने यह

देखा और उसकी गति से इसका अनुभव भी किया)—वह प्रचण्ड बाढ़ थी, लेकिन यान उसकी गति को पीछे छोड़ता हुआ आगे भाग रहा था। अद्‌भुत था यह दृश्य। कुछ स्थान ख़ासकर ख़तरों और कठिनाइयों से भरे थे, लेकिन मैं वहाँ हमेशा पानी पहुँचने के पहले ही पहुँच जा रही थी, पानी सड़क को रोके उसके ठीक पहले। और हम इस तरह बढ़ते गये, बढ़ते गये। फिर, एक अन्तिम प्रयास के साथ (सचमुच वह प्रयास नहीं था, वह इच्छा थी), अन्तिम धक्के के साथ, हम दूसरे किनारे जा लगे—और पानी वेग से आया, एकदम पीछे आकर ठहर गया! वह प्रचण्ड वेग और भयंकर गति के साथ नीचे गिरने लगा, लेकिन हम सुरक्षित स्थान पर आ पहुँचे थे। तब, दूसरे सिरे पर मैंने देखा कि उसका रंग बदल गया था, उसका रंग... वह प्रमुख रूप से नीले रंग में बदल गया, उस शक्तिशाली नीले रंग में, जो सबसे अधिक जड़-भौतिक जगत् में शक्ति का प्रतीक है, व्यवस्थित शक्ति का प्रतीक। तो हम वहाँ थे, और यान रुक गया। और फिर, अब तक चूँकि मैं गति के साथ-साथ, एकदम सीधा देख रही थी, अब यान के रुकने के बाद मैंने पीछे मुड़ कर देखा और कहा, 'आह, अब मैं पीछे के लोगों की सहायता कर सकती हूँ।'

पानी दायीं तरफ़ बह रहा था। गाड़ी के रास्ते में बीच-बीच में जहाँ पानी तेज़ी से बह रहा था, छोटे-मोटे गड्ढे थे और हर एक गड्ढे से पानी ऊपर-नीचे धचकोले खाता हुआ, तीव्र गति के साथ आगे बढ़ रहा था। यह बहुत ख़तरनाक था, क्योंकि अगर हर गड्ढे से निकलने में क्षण-भर की भी देर हो जाती तो बाढ़ छा जाती और हम उनके पार नहीं पहुँच पाते; ऐसा था कि कुछ बूँदों के पड़ने से भी रास्ता बन्द हो जाता। रास्ता बहुत चौड़ा नहीं था, लेकिन... और पानी टूट-टूट कर बरस रहा था ('टूट कर बरसना'... हमारे ये शब्द भी बहुत छोटे हैं), वह झमाझम बरस रहा था, फिर यान पूरी तेज़ी से आता और पानी के सामने रुकने की बजाय गोल चक्कर-सा लेता हुआ, बूम्... नीचे डुबकी लगा कर फ़ौरन ऊपर उठ आता, इस तरह मैंने कितने गड्ढे 'रोलर कोस्टर' की गति में ऊपर-नीचे डूबते-उतराते हुए पार किये और अन्ततः मैं वहाँ पहुँच गयी जहाँ पानी का प्रचण्ड प्रवाह मुड़ रहा था—यह था बृहद् मार्ग। अगर मैं वहाँ फँस जाती तो सब ख़तम, यह था अन्तिम पड़ाव जो मुझे पानी आने के पहले पार

करना था। अन्तिम डुबकी, और बाण से छूटे तीर की तरह मैं पूरी गति के साथ ऊपर निकल आयी, उस स्थान को पार कर दूसरे छोर पर आ रही।

एक बार दूसरी ओर पहुँचते ही, धरती स्पष्ट हो गयी, (पता नहीं कैसे), और सब कुछ तुरन्त सुरक्षित हो गया। दूर, जहाँ तक दृष्टि जा रही थी, वहाँ लहरों-पर-लहरें, बहाव-पर-बहाव दिखायी दे रहा था, वह वहाँ किसी चीज़ पर फैल रहा था... पृथ्वी पर। लेकिन जैसे ही बहाव मुड़ा कि वह सब दूसरे छोर पर चल रहा था, वहाँ पानी नीचे-ऊपर कूद-फाँद रहा था, लेकिन जैसे ही मैं इस पार आ गयी, वह मुझे छू नहीं पा रहा था—पानी पार नहीं आ पा रहा था। किसी अदृश्य वस्तु से वह रुक गया और वापस मुड़ गया।

और फिर ऐसा लगा कि इस सबकी पहले से ही तैयारी थी, मानों यहाँ से पानी को मुड़ जाना पड़ा।

वहाँ, मेरे नीचे, यान के नीचे, मुझे ऐसा लगा मानों वह धरती थी, सचमुच वह धरती-जैसी लगी, और पानी उसकी ओर सरपट दौड़ रहा था।

यान पृथ्वी पर नहीं चल रहा था, बल्कि ऊपर था उसका रास्ता (शायद तारों के बीच के क्षेत्र हों!), इस यान के लिए एक विशेष पथ था। और मुझे पता नहीं चल रहा था कि पानी कहाँ से आ रहा है; मैं उसका उत्स नहीं देख पा रही थी, वह शायद क्षितिज के उस पार कहीं परे था। लेकिन वह मूसलधार बौछारों की तरह टूट पड़ रहा था—झरनों की गति के साथ नहीं बल्कि उफनती हुई बाढ़ की तरह। मेरा रास्ता पानी की बाढ़ों और नीचे धरती के बीच पर था। मैंने अपने सामने, पीछे, दायें, बायें—हर जगह पानी ही पानी देखा—कितना अद्‌भुत था वह, क्योंकि ऐसा लगा... मानों वह चारों तरफ़ था, बस मेरे पथ पर नहीं था (हालाँकि वहाँ भी कुछ रिसाव तो था)। पानी सब जगह हलचल मचा रहा था। लेकिन उस प्रबल प्रवाह में भी एक तरह की सचेतन इच्छा थी, और मुझे इस सचेतन इच्छा के पहले 'महान् मार्ग' पर पहुँचना था। यह पानी किसी भौतिक वस्तु से मिलता-जुलता था, लेकिन उसमें एक चेतना थी, एक सचेतन इच्छा, और मुझे... वह मैं जिस इच्छा का प्रतिनिधित्व कर रही थी उसके और सामने खड़ी इच्छा के बीच एक युद्ध की भाँति था। और मैं हर दरार को एकदम ठीक समय पर पार करती जा रही थी। केवल जब मैं उस 'महान् मोड़'

पर पहुँची, मैंने उस इच्छा को देखा जो इस पानी के तीव्र प्रवाह को आगे बढ़ने के लिए विवश कर रही थी। और मैं उस मोड़ पर पानी के ठीक पहले पहुँच गयी। यह सब कुछ अद्‌भुत गति के साथ हुआ—विद्युत्‌ की भाँति! यहाँ तक कि समय भी थम गया... बिजली की कौंध की तरह मैं उस पार पहुँच गयी। और फिर, अचानक, राहत—और वहाँ नीले रंग का एक बृहद्‌ वर्गाकार प्रकट हो गया।

... उसमें सभी आयाम थे... धरती उसकी तुलना में छोटी लग रही थी, समझ रहे हो। यह सब ऐसा था मानों जब पृथ्वी पर बाढ़ का प्रकोप छा जाता है तब प्रलय जैसे टूट पड़ता है, वहाँ उससे भी कहीं अधिक बड़े पैमाने पर सब घटित हो रहा था।

जो सुखद और सचमुच बहुत रुचिकर था वह था, बाण की तरह निकला हुआ तीर, और मैं हर जगह समय पर, ठीक समय पर पहुँच रही थी। जब मैं उस पार निकल गयी तो मानों यह अनुभूति हुई कि सब कुछ ठहर गया। मुझे कोई चीज़ स्पर्श नहीं कर सकती।

मुड़ कर जब मैंने पानी के उस प्रवाह को नीचे गिरते देखा तो सोचा, "अब देखें अगर कुछ किया जा सके।" उसके पीछे कोई उपस्थित था जिसमें मुझे रस था—वह कोई व्यक्ति था या कोई वस्तु थी—लेकिन वह कुछ तो था; वह बहुत मनोहर था और उसमें नीली आभा थी। वे सचमुच व्यक्ति नहीं थे बल्कि ऐसी सत्ताओं के प्रतिनिधि थे जो बहुत क़रीब से मेरे पीछे आ रहे थे। जब मैं उस ओर थी, वह सत्ता भी वहीं थी, लेकिन चूँकि मेरी गति बढ़ती चली जा रही थी वह मेरा साथ नहीं दे पा रही थी। लेकिन मुझे उसमें विशेष रस था। 'ओह, कितनी समीप है यह; शायद मेरे साथ हो ले,' मैंने सोचा। और उसी क्षण, मैंने देखा कि यह समस्त विनाशकारी इच्छा, पानी के अपने माध्यम द्वारा—पानी प्रतीक के रूप में था—बड़े वेग से गुज़र कर सर्वत्र फैल गयी। लेकिन फिर भी, जो इस पथ पर थे उनको बचाने की सम्भावना अब भी थी। और यही विचार सबसे पहले मेरे मस्तिष्क में आया: 'देखें, अगर मैं इन सबको भी उस पार उतार सकूँ।'

नीचे पानी तहस-नहस करने पर उतारू था... उस पार निराशा का साम्राज्य था, लेकिन इस पार, अब भी आशा का चिराग जल रहा था, बाक़ी सत्ताओं को उस अन्तिम दरार से निकालने में सहायता करने के

लिए मेरे पास कोई शक्ति ज़रूर थी, लेकिन तभी मेरी आँख खुल गयी। तो सब कुछ समाप्त हो गया। शायद एक झटके में मेरी आँख खुल गयी इस कारण मैं उस शक्ति को ठीक से समझ न पायी।...

निस्सन्देह, वह यान और अग्रगति साधना का प्रतीक हैं। मैं समझ रही हूँ कि साधना की गति विनाश की शक्तियों की गति से कहीं अधिक महान् थी। और अन्त में सफलता प्राप्त हुई ही—इसमें सन्देह की कोई छाया नहीं। जब मैं उस पार पूरी तरह से स्थिर हो गयी तो अपने अन्दर जिस शक्ति का अनुभव कर रही थी उसमें औरों की सहायता करने की पर्याप्त शक्ति थी।

... क्या यह प्रलय का प्रतीक था?... कुछ लोगों का कहना है कि प्रलय तो आकर रहेगा, संसार का अन्त हो जायेगा, कैसी बेवक़ूफ़ी-भरी बातें हैं ये! क्योंकि पृथ्वी का निर्माण एक विशेष प्रयोजन के लिए हुआ है, और जब तक वह सम्पन्न नहीं हो जाता, वह विलीन नहीं होगी।

हाँ, कुछ परिवर्तन ज़रूर आ सकते हैं...।

२३ जुलाई १९६० *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

संसार की हालत

यह है स्थिति। पिछले युद्ध से तो यह और भी बिगड़ गयी है; हर साल बिगड़ती ही जाती है, लोग अपने-आपको एक ऐसी अजीब-सी स्थिति में पा रहे हैं कि जिस चीज़ को उन्होंने इतना जटिल बना डाला है, दुर्भाग्य से उसे सरल बनाने का कोई साधन उन्हें नहीं मिल रहा और फलस्वरूप पार्थिव वातावरण में यह विचार फैल रहा है—एक ऐसा विचार जिसे अति मूर्खतापूर्ण कहा जा सकता है, पर दुर्भाग्य से, यह मूर्खतापूर्ण होने से भी अधिक बुरा है, यह विपत्तिपूर्ण है—यह विचार कि यदि संसार में एक बहुत बड़ी क्रान्ति हो जाये तो शायद बाद में स्थिति अधिक अच्छी हो जायेगी...। लोग निषेध, असम्भवता, प्रत्यादेश, नियम और प्रतिक्षण की जटिलताओं के बीच ऐसे जकड़ गये हैं कि उनका दम घुटने लगा है और सचमुच उनके अन्दर यह अजीबोग़रीब विचार आता है कि यदि सब ध्वस्त हो जाये तो शायद बाद में चीज़ें अधिक अच्छी हो जायें!... यह विचार हवा में घूम रहा है। सभी सरकारों ने अपनी स्थिति ऐसी असम्भव

बना ली है और वे इतनी अधिक जकड़ दी गयी हैं कि उन्हें लगता है कि आगे बढ़ने के लिए सब कुछ तोड़ना ज़रूरी है...। *(चुप्पी)*। दुर्भाग्य से यह स्थिति सम्भावना से कुछ अधिक बन गयी है, एक **बहुत** गम्भीर संकट बन गयी है। और यह भी निश्चित नहीं है कि जीवन अभी और अधिक असम्भव नहीं बनेगा क्योंकि मनुष्य इस दुर्व्यवस्था में से—जटिलताओं की इस दुर्व्यवस्था में से—जिसमें मानवजाति जा फँसी है, बाहर निकलने में अपने-आपको बहुत ही असहाय अनुभव कर रहा है। यह एक छाया है—पर दुर्भाग्य से बहुत सक्रिय छाया है—उस नयी आशा की छाया जो मानव-चेतना में उदित हो रही है, वह आशा और आवश्यकता किसी ऐसी चीज़ के लिए है जो अधिक समस्वर हो; और जैसे-जैसे जीवन, जैसा कि यह आजकल बना हुआ है, अधिकाधिक इस समस्वरता का विरोधी होता जाता है वैसे-वैसे वह आवश्यकता भी तीव्र-से-तीव्रतर होती जाती है। ये दो विपरीत अवस्थाएँ इतने प्रचण्ड रूप में आमने-सामने मुक़ाबले में खड़ी हैं कि किसी भी समय विस्फोट जैसी कोई चीज़ घट सकती है।...

यह है इस समय संसार की हालत और यह कोई बहुत आशान्वित अवस्था नहीं है। परन्तु हमारे लिए एक सम्भावना रहती है—मैं पहले भी कई बार तुमसे उसके बारे में चर्चा कर चुकी हूँ—चाहे बाहर के संसार में चीज़ें पूरी तरह ह्रास की ओर जा रही हों और विपत्ति को टाला न जा सकता हो फिर भी हमारे लिए एक सम्भावना है, मेरा मतलब उन लोगों से है जिनके लिए अतिमानसिक जीवन कोरा स्वप्न नहीं है; जो इसकी वास्तविकता में विश्वास रखते हैं और जिनमें इसे चरितार्थ करने की अभीप्सा है—मेरा मतलब अनिवार्यतः उन लोगों से ही नहीं है जो यहाँ पॉण्डिचेरी आश्रम में एकत्र हुए हैं, बल्कि उन लोगों से भी है जो श्रीअरविन्द द्वारा दिये गये ज्ञान से तथा इस ज्ञान द्वारा ही जीवन-यापन करने के संकल्प से परस्पर बँधे हुए हैं—उनके लिए यह सम्भावना है कि वे अपनी अभीप्सा, अपने संकल्प और अपने प्रयत्न में तीव्रता लाकर तथा अपनी शक्तियों को एकत्रित करके सिद्धि के समय को कम कर दें, उनके पास इस चमत्कार को कार्यान्वित करने की सम्भावना है कि वे—व्यक्तिगत रूप में और थोड़ी मात्रा में सामूहिक रूप में—इस सिद्धि में अपेक्षित समय, अवधि एवं देश पर विजय पा लें; प्रयास की तीव्रता के द्वारा समय का स्थान ले लें, सिद्धि

की ओर काफ़ी द्रुत गति से और काफ़ी दूर तक बढ़ जायें ताकि संसार की वर्तमान स्थिति के परिणामों से अपने-आपको बचा सकें; यह सम्भावना है कि वे शक्ति, बल, प्रकाश और सत्य पर अपने-आपको इतना एकाग्र कर दें कि इसी उपलब्धि के द्वारा वे इन परिणामों से ऊपर उठ जायें और इनसे अपने-आपको बचा लें और यह कि 'प्रकाश' और 'सत्य' द्वारा, 'पवित्रता' द्वारा—आन्तरिक रूपान्तर से प्राप्त होने वाली दिव्य 'पवित्रता'—द्वारा प्रदान की गयी सुरक्षा का उपभोग करें और इसके परिणाम-स्वरूप ऐसा हो सकता है कि तूफ़ान संसार पर से ऐसे ही गुज़र जाये और निकट भविष्य की इस महान् आशा को नष्ट न कर पाये; और यह कि यह झंझा दिव्य चरितार्थता के सूत्रपात को अपने साथ बहा न ले जाये!

आराम से शान्ति के साथ सोते पड़े रहने और चीज़ों को उनके अपने ही छन्द से चलते रहने देने की अपेक्षा यदि तुम अपने संकल्प, उत्साह और अभीप्सा का पूरा-पूरा दबाव डालो और प्रकाश में उभर आओ तो तुम अपना सिर ऊँचा उठा सकते हो; तुम चेतना के उच्चतर क्षेत्र में अपने रहने, श्वास लेने, उन्नत होने और विकसित होने के लिए ऐसा स्थान प्राप्त कर सकते हो जो गुज़रते तूफ़ान से ऊपर अछूता हो।

यह सम्भव है। बहुत थोड़े परिमाण में यह पहले भी किया जा चुका है जब पिछली लड़ाई चल रही थी और श्रीअरविन्द यहाँ थे। इसे दोबारा भी किया जा सकता है। परन्तु तुम्हारे अन्दर इसके लिए चाह होनी चाहिये और प्रत्येक को अपना कार्य यथासम्भव सच्चाई और पूर्णता से करना चाहिये।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. १८७-९०

विश्व-युद्ध

"अगर विश्व-युद्ध छिड़ जाये तो उससे न केवल मानवता का अधिकांश नष्ट हो सकता है बल्कि जो बचे रहेंगे उनके लिए भी आणविक निक्षेप के प्रभाव के कारण जीने की परिस्थितियाँ असम्भव हो उठेंगी। अगर ऐसे युद्ध की अब तक सम्भावना बनी है तो क्या धरती पर 'अतिमानसिक सत्य' और 'नयी जाति' के आगमन पर प्रभाव न पड़ेगा?"

"ये सभी मानसिक अनुमान हैं और एक बार मानसिक कल्पनाओं के क्षेत्र में घुस जाने पर समस्याओं और उनके समाधानों का कोई अन्त नहीं होता। लेकिन ये सब तुम्हें सत्य के एक पग भी निकट नहीं लाते।

"मन के लिए सबसे सुरक्षित और सबसे स्वस्थ मनोवृत्ति इस तरह की है : हमसे सुनिश्चित और सकारात्मक तरीक़े से कहा गया है कि वर्तमान सृष्टि के बाद अतिमानसिक सृष्टि आयेगी, अतः, भविष्य के लिए जो कुछ तैयारी हो रही है वह उस आगमन के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ होंगी चाहे वे कुछ भी क्यों न हों और चूँकि हम इन परिस्थितियों का ठीक-ठीक पूर्वदर्शन करने में असमर्थ हैं, अतः इनके बारे में चुप रहना ज़्यादा अच्छा है।"

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. १२२-२३

नयी व्यवस्था स्थापित करना

सवेरे से ऐसा हो रहा है—हड़तालें, झगड़े, अव्यवस्थाएँ...। और कुछ ऐसा भाव है कि जिन्होंने अव्यवस्था पैदा की है उन्हीं की सहायता से व्यवस्था फिर से लायी जाये। यही चीज़ करनी है। सामान्य सद्भावना और समस्त नैतिक और सामाजिक नियमों को आधार बनाने की जगह—ये सब ढह चुके हैं—तुम्हें ऊपर उठना चाहिये, भागवत 'इच्छा' और भागवत 'सामञ्जस्य' होने चाहियें। हम यही तो चाहते हैं। और फिर, जिन लोगों ने चीज़ों के सामान्य विधान और सामान्य सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह किया है उन्हें सिद्ध करना होगा कि वे उच्चतर चेतना और अधिक वास्तविक सत्य के साथ सम्पर्क में हैं।

इसे करने का यही समय है *(ऊपर की ओर छलाँग का संकेत)*।

और व्यवस्था करने वाली क्षमता की दृष्टि से, यह एक शक्ति है... अत्यधिक शक्तिसम्पन्न। यह अद्भुत है। और अगर यह शक्ति उच्चतर व्यवस्था, सत्यतर चेतना की सेवा में रखी जा सके तो कुछ किया जा सकता है।

व्यक्ति को ऊपर... ऊपर की ओर छलाँग मारनी होगी।

वे सब लोग जो नयी व्यवस्था लाना चाहते हैं वे पीछे की ओर, पुराने विचारों की ओर खींचते हैं—और इसीलिए कभी सफल नहीं होते। यह

सब ख़तम हो चुका है, हमेशा के लिए ख़तम हो चुका है। हम ऊपर की ओर जायेंगे। केवल वे ही काम कर सकते हैं जो ऊपर की ओर उठते हैं।

तुम्हारे पास कुछ नहीं है? कुछ नहीं पूछना?

मुझे ठीक पता नहीं कि मैं किस दिशा में जा रहा हूँ।

दिशा बस एक ही है—भगवान् की ओर। और जैसा कि तुम जानते हो, वह उतनी ही अन्दर है जितनी बाहर, उतनी ही ऊपर है जितनी नीचे। वह सब जगह है। इसी जगत् में, जैसा कि वह है, भगवान् को पाना और 'उनके' साथ चिपके रहना है—केवल 'उन्हीं' के साथ; कोई और रास्ता नहीं है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. २७०-७१

विभीषिका की सम्भावनाएँ

कुछ ही दिन पहले मानों विभीषिका सिर पर ही थी। और तब, उस समय, मेरी सारी सत्ता, मानों... (कैसे कहा जाये?) हाँ, वह, हम कह सकते हैं, सच्ची 'विजय' के लिए अभीप्सा थी: ऐसी विजय नहीं जिसे यह चाहता है या वह चाहता है या... बल्कि सच्ची 'विजय'। ऐसा लगता है कि यही चीज़ **सब** कठिनाइयाँ ले आयी—**ये ऐकान्तिक संकल्प**। और तब, अचानक मानों एक प्रकाश प्रकट हुआ: 'विजय' की सम्भावना। वह अब भी है... यह चमत्कारिक नहीं है, बल्कि दिव्य 'हस्तक्षेप' है... 'परम प्रज्ञा' का हस्तक्षेप। क्या वह मूर्त रूप लेगा? देखें। वह आती हुई मालूम होती है। वह इस तरह आती हुई मालूम होती है—सम्भावना के रूप में *(ख़ास ऊँचाई पर दोनों हथेलियाँ नीचे की ओर)*।

नहीं, यह हाल की चीज़ है, बिलकुल हाल की। मैं नहीं कह सकती क्योंकि यह अचानक नहीं आयी। लेकिन यह दिनों की बात है।

जी हाँ, क्योंकि कुछ समय तक मैं बहुत निराशा का अनुभव कर रहा था।

यह एक बुरी वृत्ति है।

मेरे अन्दर पहले यह वृत्ति नहीं थी, फिर भी, ऐसा लगता था कि एक निराशाजनक वातावरण अन्दर आ रहा है।

जो कुछ भगवान् को नहीं चाहता वह जान-बूझ कर ऐसा वातावरण तैयार करता है ताकि उन लोगों का उत्साह भंग करे जो भगवान् को चाहते हैं। तुम्हें ज़रा भी... ज़रा भी ध्यान न देना चाहिये। यह शैतान का तरीक़ा है। निराशावाद शैतान का अस्त्र है और वह अपनी स्थिति को भाँप लेता है... *(हिलाने का संकेत)*। हाँ, तो मैं जिस सम्भावना को देख रही हूँ, अगर वह सिद्ध हो जाये तो यह वास्तव में विरोधी शक्तियों पर एक निर्णायक विजय होगी—स्वभावतः, वह भरसक अपना बचाव करता है...। वह हमेशा शैतान होता है, जैसे ही तुम निराशावाद की पूँछ भी देखो तो समझ लो कि यह शैतान है। यह उसका महान् अस्त्र है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. २७३-७४

बात यह नहीं है कि सामान्य अवतरण होने से लोग भौतिक मन से बाहर निकल आते हैं। अगर कोई अपने भौतिक मन में ही बने रहने का चुनाव करे तो भले एक हज़ार अवतरण हो जायें, उससे उसे कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा।

अगर मनुष्य अपने अहंकार से चिपका रहे तो धरती पर उतरता हुआ अतिमानस किसी भी चीज़ को नहीं बदलेगा।

CWSA खण्ड २८, पृ. २९३ **श्रीअरविन्द**

धरती पर अतिमानसिक प्रकाश के अवतरण की शर्तें हैं, अन्धकाररहित ज्योतिर्मयी चेतना जो अतिमानसिक प्रकाश की ओर मुड़ी हो और अतिमानसभावापन्न नमनीयता से भरी हो।

श्रीमाँ

भविष्य

आगे कूदने के लिए पीछे हटना

साधारण तौर पर यह विश्वास किया जाता है कि प्रकृति में सभी वस्तुएँ सर्वदा बुरे रूप में समाप्त होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति उन लोगों की कहानी जानता है जो अपने जीवन में महान् सफलता का उपभोग करने के बाद शोचनीय अन्त को प्राप्त हुए, उन लोगों की कहानी जानता है जिनमें असाधारण क्षमताएँ थीं और जिन्होंने अन्त में उन्हें खो दिया; उस राष्ट्र की कहानी जानता है जो दीर्घकाल तक एक अद्‌भुत सभ्यता का उदाहरण था —सभ्यता लुप्त हो जाती है और राष्ट्र एक ऐसी शोचनीय वस्तु में बदल जाता है कि कोई याद भी नहीं कर पाता कि वह पहले क्या था। ऐसा लगता है कि पृथ्वी का इतिहास ऐसी जीतों की कहानी है जिनके बाद हारें आती हैं, ऐसी हारों की कहानी नहीं जिनके बाद जीतें आती हैं।

परन्तु वास्तव में, जब कभी वैश्व और दिव्य वस्तुओं का प्रश्न उठता है तब विराट् दर्शन-शक्ति तथा दिव्य ज्ञान-शक्ति की आवश्यकता होती है ताकि यह जाना जा सके कि सत्य अपने-आपको किस प्रकार अभिव्यक्त करता है। संसार में एक प्रकार की व्यापक निराशावादी दृष्टि है जो कहती है कि वस्तुएँ अच्छे रूप में भले शुरू हों पर समाप्त बुरे रूप में ही होती हैं, दुर्बलता, धूर्तता, मिथ्याचार और दुष्टता का ही सर्वदा बोलबाला रहता है। यही कारण है कि जिन लोगों ने संसार को अपने निजी व्यक्तिगत आयाम के अन्दर देखा है उन्होंने कहा है कि संसार बुरा है और जितनी जल्दी सम्भव हो हमें उसमें अपना काम समाप्त कर देना चाहिये और उससे बाहर निकल जाना चाहिये। गुरुओं ने यह शिक्षा तो दी है, परन्तु उनकी शिक्षा केवल यही सिद्ध करती है कि उनकी दृष्टि अत्यन्त संकीर्ण है तथा उनके मानवीय व्यक्तित्व के आयाम से सीमित है।

वास्तव में, प्रकृति की गतियाँ ज्वार-भाटे की तरह होती हैं: वे आगे बढ़ती हैं, फिर पीछे हटती हैं, आगे बढ़ती और पीछे हटती हैं; इसका अर्थ होता है, वैश्व जीवन में और पार्थिव जीवन में भी उत्तरोत्तर प्रगति, यद्यपि ऊपर से देखने में यह प्रगति पीछे के हटाव से कट जाती है। परन्तु ये पीछे के हटाव केवल बाहरी रूप हैं, ठीक जैसे व्यक्ति आगे कूदने के लिए

पीछे हटता है। तुम पीछे हटते हुए प्रतीत होते हो पर वह केवल और आगे जा सकने के लिए होता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. २६-२७

सच्चाई या रसातल

(नव वर्ष के सन्देश के बारे में : "मनुष्यो, देशो और महाद्वीपो! चुनाव अनिवार्य है : सत्य या फिर रसातल।

एक साधक माँ से पूछता है, "रसातल" का क्या अर्थ है, या दूसरे शब्दों में, साधक को किस चीज से डरना चाहिये?

ठीक इस समय बहुत बड़ा तनाव है। सबने ऐसी स्थिति ले ली है मानों युद्ध आरम्भ करने वाले हों। वह अन्धा आवेग है जिसे मनुष्य अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में ले आते हैं।

इस सबके मूल में एक भय है, व्यापक अविश्वास है, और वह है जिन्हें वे अपने "हित" कहते हैं (धन, व्यापार)—इन तीन चीजों का संयोजन है। जब मानवता के इन तीन निम्नतम आवेगों को सक्रिय किया जाता है, उन्हीं को मैं रसातल कहती हूँ।

जब व्यक्ति ने भगवान् को पाने के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग करने का निश्चय कर लिया हो, और अगर वह निष्कपट हो, यानी अगर संकल्प निष्कपट हो और उसका निष्कपटता के साथ पालन किया जाये तो बिलकुल किसी भी चीज से भयभीत न होना चाहिये, क्योंकि उसके साथ जो हो रहा है या होगा वह सब उसे इस सिद्धि तक छोटे-से-छोटे मार्ग द्वारा ले जायेगा।

यह भागवत कृपा का उत्तर है। लोग यह मानते हैं कि भागवत कृपा का अर्थ है, तुम्हारे सारे जीवन में सब कुछ सरल और सहज बना दिया जाये। यह सच नहीं है।

भागवत कृपा तुम्हारी अभीप्सा की चरितार्थता के लिए कार्य करती है और सबसे अधिक तत्पर, सबसे तेज़ चरितार्थता पाने के लिए सभी चीज़ों की व्यवस्था की जाती है—अतः डरने की कोई बात नहीं।

भय कपट से आता है। अगर तुम आरामदेह जीवन, अनुकूल परिस्थितियाँ इत्यादि चाहो, तो तुम शर्तों और सीमाओं को लगाते हो, और तब तुम भयभीत हो सकते हो।

लेकिन इसका साधना के साथ कोई सम्बन्ध नहीं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. १९९-२००

आरम्भ है, समाप्ति नहीं

हम जो कर रहे हैं उसमें अगर हम जब कभी सफलता प्राप्त करें तो वह हमारे कार्य का आरम्भ होगा, समाप्ति नहीं। वह धरती पर एक नयी चेतना की नींव की स्थापना होगी—ऐसी चेतना होगी जिसके अन्दर अभिव्यक्ति की असंख्य सम्भावनाएँ होंगी। अभिव्यक्ति में ही एक शाश्वत प्रगति चलती रहती है, उसके परे प्रगति का कोई क्षेत्र नहीं होता।

अगर इस भौतिक जगत् का लक्ष्य आत्मा की मुक्ति ही है तो फिर अतिमानस के उतरने और उसके मूर्त रूप लेने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। तब तो आध्यात्मिक मुक्ति और निर्वाण ही काफ़ी होते। अगर हमारा उद्देश्य अतिभौतिक स्तरों से ऊपर उठना है, तब भी अतिमानस का उतरना आवश्यक नहीं होता। व्यक्ति स्वर्ग के देवता की आराधना कर यहाँ से ऊपर, किसी स्वर्ग में आसानी से प्रवेश कर लेता। लेकिन इस मुक्ति, उस प्रवेश में कोई प्रगति नहीं बसती। अन्य जगत् प्ररूपी जगत् हैं, प्रत्येक अपने आकार, स्वरूप और विधि-विधान से बँधा हुआ है। क्रमविकास धरती पर ही होता है और इसीलिए धरती ही प्रगति तथा विकास के लिए सही क्षेत्र है। दूसरे जगत् की सत्ताएँ एक जगत् से दूसरे जगत् में प्रगति नहीं करतीं। वे बस अपने ही प्ररूप में जकड़ी रहती हैं। शुद्ध रूप से मठवासी वेदान्तिक कहेगा कि *'सर्वमिदं ब्रह्म'*, जीवन एक स्वप्न है, माया है, केवल ब्रह्म का अस्तित्व है। जब कोई निर्वाण या मुक्ति प्राप्त कर लेता है तब वह केवल तब तक जीता है जब तक शरीर का पतन नहीं हो जाता—उसके बाद जीवन नाम की कोई चीज़ बची नहीं रहती।

वे लोग रूपान्तर में विश्वास नहीं करते, क्योंकि मन, प्राण तथा शरीर अज्ञान हैं, माया हैं—एकमात्र वास्तविकता रूपहीन, सम्बन्धहीन *आत्मा* या *ब्रह्म* है। जीवन तो सम्बन्धों की चीज़ है; शुद्ध *आत्मा* या *स्व* में समस्त

जीवन और सम्बन्ध विलीन हो जाते हैं। ऐसी किसी माया या ऐसे किसी भ्रम को रूपान्तरित करने की क्या आवश्यकता है भला जो माया या भ्रम के सिवाय और कुछ बन ही नहीं सकता (भले वह कितना ही रूपान्तरित क्यों न हो जाये)? उन वेदान्तियों के लिए 'निर्वाणिक जीवन' जैसी कोई चीज़ ही नहीं होती।

कुछ ही योग ऐसे हैं जिनका बस अज्ञान से ज्ञान में प्रवेश करने के सिवाय, अन्य किसी भी प्रकार का रूपान्तर लक्ष्य होता है। कभी-कभी विचार विभिन्न होते हैं—कभी वे भागवत ज्ञान या शक्ति पाना चाहते हैं या फिर भागवत शुद्धि या नैतिक पूर्णता अथवा भागवत प्रेम। बस, इसके सिवाय और कुछ नहीं।

CWSA खण्ड २८, पृ. २८८-८९

अतिमानस तथा विध्वंस

अतिमानस के धरती पर उतरने के समय किन्हीं भी विध्वंसों की आवश्यकता नहीं होगी। हाँ, निश्चित रूप से महान् परिवर्तन होंगे, लेकिन ज़रूरी नहीं है कि वे महानाश लाने वाले परिवर्तन हों। जब अधिमानस की शक्तियाँ परिवर्तन के लिए प्रबल दबाव डालती हैं तब महाविनाश की बड़ी सम्भावना रहती है क्योंकि शक्तियों की भारी रगड़ और उग्रताएँ अपना सिर उठा लेती हैं। अतिमानस की पूर्णता के अन्दर चीज़ों पर सम्पूर्ण वश रखने और सबको सुसामञ्जस्यमय बनाने की पूरी शक्ति होती है जो नाट कीय संघर्ष तथा उग्रता के साधनों द्वारा नहीं बल्कि अन्य साधनों द्वारा प्रतिरोध पर विजय पा लेती है।

विश्व की तीन शक्तियों के अधीन सभी प्राणी तथा सभी वस्तुएँ हैं—सृजन, संरक्षण और विनाश; जिस किसी वस्तु का सृजन होता है वह अमुक समय तक बनी रहती है, फिर धराशायी होने लगती है। विनाश की शक्ति को यदि शक्तिहीन बना दिया जाये तो उसका अर्थ होगा कि सृष्टि का विनाश नहीं होगा बल्कि वह हमेशा बनी रहेगी, साथ ही सदैव विकसित भी होती रहेगी। अज्ञान में अगर हम प्रगति करना चाहें तो विनाश आवश्यक हो जाता है—'ज्ञान' में, 'सत्य'-सर्जन में, विधान यह है कि प्रलय के बिना, निरन्तर प्रस्फुटन चलता रहता है। CWSA खण्ड २८, पृ. २९२-९३

'पुरोधा'

दैनन्दिनी

मई

१. दुःख का एक वाद बना लेना ख़तरनाक है। अगर दुःख में रस लिया जाये तो वह अभ्यास बन जाता है और चिपक जाता है और एक बार चिपक जाये तो दुःख-जैसी चिपकाऊ चीज़ कम ही होती है।

२. यह एक भूल-भरा विचार है कि दुःख-दर्द किसी पाप या विरोध के दण्ड-स्वरूप आरोपित किये जाते हैं।

३. हमें सभी कठिनाइयों का सामना अधिक अचञ्चल और कम अहंकारपूर्ण भाव के साथ करना चाहिये।

४. अगर स्वयं तुम्हारे अन्दर कोई त्रुटि, कोई अशुद्धि, दुर्बलता या अज्ञान न हो तो विरोधी शक्तियाँ कभी विजय नहीं पा सकतीं, तुम्हें छू तक नहीं सकतीं।

५. तुम्हें अपने अन्दर दुर्बलता को खोज कर उसका संशोधन करना चाहिये।

६. काम के लिए, भागवत शक्ति से अभीप्सा करो। अपने-आपको आन्तरिक रूप से माताजी के साथ सम्पर्क में रखो।

७. तुम्हें छोटी-मोटी चीज़ों को बहुत अधिक महत्त्व न देना चाहिये। महत्त्वपूर्ण बात है, उस आदर्श को कभी अपनी आँखों से ओझल न होने दो जिसे तुम सिद्ध करना चाहते हो और उसे सिद्ध करने के लिए अपना अच्छे-से-अच्छा प्रयास करो।

८. भगवान् के बिना हम सीमित, अक्षम और असहाय सत्ताएँ हैं।

९. यदि हम अपने-आपको पूरी तरह भगवान् के अर्पित कर सकें तो उनके साथ सब कुछ सम्भव है और हमारी प्रगति असीम होगी।

१०. प्राण को नियन्त्रित रखना और मनमानी न करने देना चाहिये। प्राण तुम्हारे ऊपर नहीं, बल्कि प्राण पर तुम शासन करो।

११. प्राण एक अनिवार्य यन्त्र है। उसके बिना कोई सृजन या प्रबल क्रिया सम्भव नहीं है।

१२. चाहे जो कष्ट या दुःख आयें, एक ही उपाय है, भागवत शक्ति और

पथ-प्रदर्शन पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए चलते चलो।

१३. अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारा उद्योग सफल हो तो उसे हमेशा अधिकाधिक शुद्ध, स्थायी और लगातार होना चाहिये। अगर तुम सच्चाई से अभ्यास करो तो जिस सहायता की ज़रूरत है वह तुम्हें अवश्य मिल जायेगी।

१४. तुम्हें सबसे पहले यह करना चाहिये कि अवसाद और निराशा के जोखिम-भरे द्रव्य को निकाल फेंको।

१५. साधना में सफलता के लिए अचञ्चल मन और अचञ्चल प्राण पहली आवश्यक चीज़ें हैं।

१६. प्राण हमेशा अपनी गतिविधियों को प्रकाश से छिपाने की कोशिश करता है।

तुम्हें विवेक को विकसित करना चाहिये ताकि प्राण के लिए तुम्हें धोखा देना असम्भव हो जाये।

१७. समस्त अवसाद बुरा होता है, वह चेतना को नीचा करता, ऊर्जा को कम करता और विरोधी शक्तियों के लिए द्वार खोल देता है।

१८. अपने अन्दर प्राणिक अवसाद की किसी भी क्रिया को प्रवेश न करने दो।

१९. तुम्हें इस विश्वास से चिपके रहना चाहिये कि चूँकि तुम्हारे अन्दर सच्ची अभीप्सा है अतः उसकी परिपूर्ति अवश्यम्भावी है।

२०. तुम अपने जीवन का एक घण्टा लो, वह, जो तुम्हें सबसे अधिक सुविधाजनक लगे, और उस समय तुम अपने-आपका बहुत ही ध्यानपूर्वक निरीक्षण करो और वही शब्द बोलो जो एकदम से अनिवार्य हों।

२१. जो धैर्यशाली, शरीर से संयत हैं, वाणी से संयत हैं तथा मन से संयत हैं, वे वास्तव में सुसंयमी हैं।

२२. हम मार्ग पर जितना ही अधिक आगे बढ़ते हैं, भागवत सत्ता की आवश्यकता उतनी ही अधिक अनिवार्य होती जाती है।

२३. मिथ्यात्व का एक ही समाधान है।

वह है अपनी चेतना में से उन सभी चीज़ों को साफ़ कर देना जो भगवान् की उपस्थिति का विरोध करती हैं।

२४. हमेशा सतत शुभेच्छा की स्थिति में रहना—इसे अपना नियम बना लो, किसी चीज़ से परेशान न होओ और किसी की परेशानी का कारण न बनो और, जहाँ तक हो सके, किसी को कष्ट न पहुँचाओ।

२५. दूसरों के साथ रहते हुए तुम्हें हमेशा एक दिव्य उदाहरण होना चाहिये। तुम्हें प्रतिपल एक ऐसा अवसर बनना चाहिये जो तुम्हें भागवत जीवन को समझने और उस मार्ग पर चलने के लिए दिया गया है।

२६. विजय से पहले की घड़ियाँ बहुधा सबसे कठिन होती हैं।

२७. कठिनाइयों का पूर्व-दर्शन न करो, इससे उन्हें पार करने में मदद नहीं मिलती, इससे उन्हें आने में मदद मिलती है।

२८. अपनी कठिनाइयों को भूल जाओ, अपने-आपको भूल जाओ, और भगवान् तुम्हारी प्रगति की ज़िम्मेदारी ले लेंगे।

२९. सभी अग्नि-परीक्षाओं के लिए कृतज्ञ होओ, वे भगवान् तक जाने का छोटे-से-छोटा रास्ता हैं।

३०. कोई भी कठिनाई क्यों न हो, अगर हम सचमुच शान्त रहें तो समाधान मिल जायेगा।

३१. 'भागवत उपस्थिति' दिन-रात मौजूद है। चुपचाप अन्दर की ओर मुड़ना काफ़ी है और तुम उसे पा लोगे।

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

सचेतन बनना

अब हम भारतीय नारी की नित्य-चर्या को देखें और पता लगाएँ कि उसमें क्या किया जा सकता है क्योंकि अगर वह अपने-आपको न उठा सके, अपने-आप प्रगति न कर सके, तो दूसरों की प्रगति के बारे में सोचना बेकार है, उन्हें अपनी चेतना के बारे में, अपनी सच्ची सत्ता के बारे में बताना बेकार है। स्वयं उसके अपने सचेतन बनने की क्रिया से दूसरों पर असर होगा और बिना बोले उसके चारों ओर परिवर्तन होना शुरू होगा। उसे बोलना न होगा, अपने-आपको औरों पर आरोपित न करना होगा,

चीज़ें बदलनी शुरू हो जायेंगी और हर चीज़ ऊँची उठने लगेगी।

तो पहली चीज़ है भगवान् को याद करना। केवल याद करना ही नहीं बल्कि मन, प्राण, शरीर में भगवान् की उपस्थिति को अनुभव करना और यह प्रार्थना करना कि तुम अपने अन्दर, अपने चारों ओर और अपने द्वारा भगवान् के कार्य के बारे में सचेतन हो। तीन चीज़ें ज़रूरी हैं: भागवत उपस्थिति के बारे में सचेतन होना, अपने अन्दर उनके कार्य के बारे में सचेतन होना, तथा अपने द्वारा और अपने **चारों ओर** उनके बारे में सचेतन होना। तुम्हारे अन्दर जो भी विचार उठे, जो भी आवेश आये उसे उन्हें याद करते हुए उनके प्रकाश में रख दो। तुम्हें यह देख कर आश्चर्य होगा कि यदि ये चीज़ें भगवान् की इच्छा के साथ मेल नहीं खातीं तो वे अपने-आप विलीन हो जायेंगी। तुम्हें कोई प्रयास न करना होगा। अगर वह भगवान् की इच्छा के साथ मेल रखने वाली चीज़ हो तो वह अपने-आप मज़बूत होती जायेगी, उसमें और वेग आयेगा और तुम उसे उपलब्ध कर सकोगी। यह पहला क़दम है—तुम्हारे **अन्दर** भगवान् की क्रिया है।

तुम्हारे **द्वारा** का मतलब है, जो शब्द तुम बोलो, जो काम तुम करो, जो कपड़े, जो मकान या फ़र्नीचर तुम चुनो, जो भी चीज़ तुम छुओ उसमें भागवत स्पर्श हो। तुमको यह विचार ही छोड़ देना चाहिये कि तुम काम कर रही हो। तुमको सोचना यह चाहिये कि भागवत चेतना मेरी उँगलियों के द्वारा काम कर रही है, भागवत चेतना मेरे पैरों में गति कर रही है, मेरे मुख से बोल रही है। अगर तुम ऐसी चेतना में रह सको तो तुम जिसका सतत स्पर्श करोगी उसमें एक भागवत छाप आ जायेगी, चाहे वह तुम्हारा बालक हो या पति, चाहे घर की साज-सामग्री हो या फिर भोजन—सभी के अन्दर एक नया स्पर्श दिखलायी देगा। अगर भोजन की बात है तो उसमें एक नया स्वाद आ जायेगा, अगर बच्चे हैं तो उनकी आँखों में एक नयी चमक दिखायी देगी, यदि पति की बात है तो उनके जाने बिना धीरे-धीरे तुम उनके अन्दर एक नया परिवर्तन देखोगी क्योंकि तुम्हारा भागवत चेतना के साथ सतत सम्पर्क होगा। चाहे जो काम हो, चाहे चित्रों की झाड़-पोंछ हो, फ़र्श की सफ़ाई हो, वह भागवत उपस्थिति का आह्वान और उसे स्थापित करने की क्रिया हो सकती है।

एक बार तुम अपने **चारों ओर** ऐसा वातावरण पैदा कर लो और

ऐसे मकान में रहो जो ऐसे वातावरण से घिरा हो, तो तुम कल्पना कर सकती हो कि इस तरह तुम अपने परिवार, अपने बाल-बच्चों और अपने घर में प्रवेश करने वालों की कितनी सेवा करती हो। तुम यह वातावरण एक शुद्ध करने वाले स्नान के रूप में सबको देती हो, जो सबको ऊँचा उठाता है और यह एक बहुत बड़ी चीज़ है। यह पुरुष के बस का काम नहीं है, यह नारी का काम है जो घर में इस तरह का वातावरण, इस तरह की आबोहवा पैदा कर सकती है। पुरुष यह नहीं कर सकते, यह उनके बस का काम ही नहीं है। तो अपने इर्द-गिर्द के वातावरण में करने-लायक़ यह तुम्हारा पहला काम है।

माताजी ने कहा है कि अगर तुम कम बोलो, अगर तुम हमेशा अपने-आपको उच्चतम चेतना में रखने की कोशिश करो ताकि तुम्हारे मुख से हमेशा उचित शब्द ही निकला करे, अगर तुम अपने दिन को भागवत उपस्थिति के पथ-प्रदर्शन के अनुसार ही व्यवस्थित करो तो तुम देखोगी कि धीरे-धीरे तुम अपने वातावरण के साथ, आस-पास के लोगों और चीज़ों के साथ एक नया सम्बन्ध स्थापित कर सकोगी। इसका मतलब यह है कि तुम्हारे पति जानते होंगे कि तुम परिस्थिति के साथ अमुक ढंग से व्यवहार करने वाली हो—यह है तुम्हारे व्यक्तित्व का अंग। इसलिए बजाय इसके कि तुम हमेशा उनके साथ समायोजित होओ, तुम देखोगी कि वे तुम्हारे साथ समायोजित होने की कोशिश कर रहे हैं क्योंकि भगवान् को याद रखते हुए तुम अपने अन्दर एक उच्चतर चेतना को, उच्चतर शक्ति को लिये रहोगी और वे अपने-आपको समायोजित करने की कोशिश करेंगे। जब कभी तुम्हारे सामने कोई समस्या आये, सामञ्जस्य के लिए अभीप्सा करो, दूसरे व्यक्ति में परिवर्तन के लिए अभीप्सा करो और तुम देखोगी कि हर चीज़ कैसे यथास्थान आ रही है।

मुझे माताजी की सुनायी हुई एक छोटी-सी घटना याद आ रही है। उन्होंने सुनाया कि जब उनके पुत्र ऑन्द्रे हिन्दुस्तान आये थे तो उनके लौटते समय आश्रम के कामेश्वर उन्हें हवाई-अड्डे तक पहुँचाने गये थे। उन्होंने ऑन्द्रे से पूछा कि आपको कब पता लगा कि आपकी माँ दिव्य जननी हैं। तो ऑन्द्रे ने कहा, जब मैं नौ वर्ष का था। माताजी ने बताया था कि जब ऑन्द्रे नौ वर्ष के थे तो कुछ लोग उनके विरुद्ध बोलने लगे। नौ वर्ष के

बालक ने उन लोगों से कहा, "ऐसे मत बोलो, मेरी माँ दिव्य जननी हैं।" तुम्हें बच्चों के साथ इस तरह का नाता जोड़ना चाहिये, तब बच्चों को तुम्हारे लिए आदर और प्रेम होगा।

मैंने मद्रास के एक परिवार में देखा है जिसमें अगर माँ ज़रा भी अस्वीकृति दिखाती तो बच्चे बेचैन हो उठते थे। इस प्रकार के सम्बन्ध के कारण ही जब बच्चे किसी प्रतियोगिता में जाते तो हमेशा अपना अच्छे-से-अच्छा करते थे। सारा फ़र्क इसी में है कि तुम अपने पति और अपने बच्चों के साथ कैसा सम्बन्ध रखती हो। ये सामान्य बातें कि दोनों हाथों को मिल कर काम करना चाहिये, नहीं तो कोई काम नहीं बनता, निम्नतर स्तर पर ठीक हैं पर उच्चतर अर्थ में एक हाथ रास्ता दिखा सकता है। अगर तुम सचमुच उच्चतर चेतना तक उठ सको, तो एक हाथ काफ़ी है। लेकिन अगर तुम निचली चेतना में हो तो दोनों हाथ ज़रूरी होते हैं।

(क्रमशः) —नवजातजी

शाश्वत ज्योति

(४)

हम आश्रम की वरिष्ठ साधिका चित्रा सेन—हमारी प्रिय चित्रा दी—की डायरी में अंकित श्रीमाँ की बातचीत बीच-बीच में दे रहे हैं। स्वयं चित्रा दी के शब्दों में सुनिये—

'इस वार्तालाप में माताजी की अधिकांश बातें मेरी डायरी से हैं। हम उनके साथ जो भी बातचीत करते थे, उन्हें यथासम्भव ईमानदारी से लिख लेते थे। यह वार्तालाप माँ के द्वारा न तो देखा गया है और न ही सुधारा।'

मैं यहाँ एक और छोटी-सी घटना का उल्लेख करना चाहूँगी जो काम करने की मनोवृत्ति की महत्ता को सामने लाती है। एक बार हमें प्रेस में रविवार की सुबह काम करने के लिए कहा गया। मज़दूर वहाँ नहीं होंगे, लेकिन इस अत्यावश्यक काम को पूरा करना ही था। एक मेज़ पर हम छह-आठ लोग बैठे काम कर रहे थे। काम करते समय कोई धीरे से एक

धुन गुनगुनाने लगा। कुछ बातें भी हो रही थीं। हमने काम पूरा किया। अगली सुबह जब मैं 'उनके' पास गयी, उन्होंने कहा, "मैंने सुना कि काम करते समय तुम बातें कर रही थीं।" मुझे थोड़ी हैरानी हुई, वह बिलकुल मामूली गपशप थी! मैंने उत्तर दिया, "हमें सिर्फ़ काग़ज़ को मोड़ने का काम करना था माँ, और काम पूरा हो गया है।" मालूम है उन्होंने क्या कहा? उन्होंने कहा, "अगर मुझे काग़ज़ को मोड़ना होता तो मैं अपनी पूरी चेतना उसी में लगा देती, ताकि उससे बेहतर हो ही न सके।" अब कल्पना करो, यह बहुत मधुरता के साथ कहा गया था, लेकिन जो माँ को जानते हैं वे बहुत अच्छी तरह यह समझते हैं कि चाहे वे बहुत मधुर और मुस्कुराती हुई दीखती हों, लेकिन सम्बन्धित व्यक्ति को एक आन्तरिक झटका मिल सकता है—मानों एक तमाचा! और मुझे वह तमाचा मिला। उन्होंने मुझे मेरी ग़लती दिखलायी। उस दिन मुझे जो पाठ मिला उसे मैं कभी नहीं भूलूँगी।

क्रीड़ांगण में हफ़्ते में तीन बार वे अनुवाद की कक्षा लिया करती थीं। श्रीअरविन्द की कृतियों का उन्होंने फ्रेंच में अनुवाद किया था। उस समय मैं लड़कियों के दल की कप्तान हुआ करती थी। यह कक्षा हमारे दल की गतिविधि के दौरान होती थी। मैंने देखा कि मेरा दल सचमुच कम होता जा रहा है क्योंकि मेरी सहेलियाँ दल की गतिविधियों में अनुपस्थित रहने लगीं। श्रीमाँ ने उन्हें अपनी कक्षा में भाग लेने के लिए बुला लिया था। इससे शेष सदस्यों के साथ दल की सामान्य गतिविधियों का सञ्चालन करना मुश्किल हो रहा था। मुझे भी उनकी कक्षा से बाहर रखे जाने का बड़ा दुःख हुआ। फिर, एक दिन हमारी दल की गतिविधियों के बाद उन्होंने मुझे रोक कर कहा, "तुम्हें मालूम है, मैं कई बार तुम्हें कक्षा में बुलाने की सोच रही थी। लेकिन वह तुम्हारे काम का समय है।" मैं इस बात से इतनी ख़ुश और भावुक हो उठी कि उन्होंने मुझे याद किया। साथ ही, मुझे इस बात से अवगत कराया गया कि वे काम को कितना महत्त्व देती हैं।

एक बार प्रेस में कुछ काम था। 'कार्ड' पर उनके प्रतीक को उभारना था। इन 'कार्डों' को वे बाद में वितरित करने वाली थीं। यद्यपि उस समय श्रीमाँ की 'प्रार्थना और ध्यान' की कक्षा थी, मेरी मित्र तथा मैं २-३ दिनों तक कक्षा में नहीं गयीं और हमने काम किया ताकि हम 'कार्डों' को समय पर पूरा कर सकें।

माँ ने न केवल शारीरिक काम के लिए प्रोत्साहित किया बल्कि उन्होंने लोगों को कलात्मक, सौन्दर्यात्मक कार्यों के लिए भी हमेशा प्रेरित किया। अगर तुम कभी माँ के उस समय के कशीदाकारी किये हुए गाउन देखो तो कभी विश्वास ही नहीं कर पाओगे कि उन पर कशीदाकारी की गयी है—काम में ऐसी पूर्णता हुआ करती थी!

एक मूलभूत पक्ष जिसे हमने माँ से सीखा वह था, भौतिक चीज़ों की देखभाल करना। एक बार माँ विद्यालय में कुछ देखने गयीं। माँ के आगमन की तैयारी में हर चीज़ को सजाया गया था। जब वे पहुँचीं, वे सीधी एक आलमारी की तरफ़ गयीं और उन्होंने उसे खोला। वहाँ जो लोग थे वे जल्दी में जो काम समाप्त नहीं कर पाये थे, वह सब उन्होंने उसके अन्दर ठूँस दिया था! एक दूसरे अवसर पर वे एक विभाग को देखने गयीं, वे सीधी गोदाम में गयीं। वह एक भवन-निर्माण विभाग था। यहाँ फिर वे सीधी उसी जगह पहुँची जहाँ हर चीज़ तितर-बितर रखी हुई थी। वहाँ के लोगों ने माँ से पूछा, "आप यहाँ क्यों आयीं?" उन्होंने कहा, "मैंने एक आवाज़ सुनी! वे चीज़ें कह रही थीं—आओ और पहले हमें देखो। इन लोगों ने हमें कैसे रखा है।" तो हम लोगों के लिए यह जानना बहुत ज़रूरी है कि भौतिक चीज़ों का कैसे आदर किया जाये। जड़ में, भौतिक में स्थित भागवत चेतना का आदर करो और मेरे ख़याल से, कार्य हमें उस भौतिक के सम्पर्क में और साथ ही उस व्यक्ति की शारीरिक सत्ता के भौतिक तत्त्व के सम्पर्क में भी ले आता है जो कार्य करता है।

(क्रमशः) अनु. वीणा

आलम

स्वाभाविक बच्चों की तरह मैंने भी जब मुँह खोला, पहला शब्द 'दा' बोला। पिताजी स्वर्गवासी होने से महज़ दस रोज़ पहले, बड़े ही चाव से मुझे अपने पास बिठा कर मुझसे बतिया रहे थे। लगता था, शायद यही एक कहानी शेष बची थी, जिसे बताना वे भूल गये थे, या फिर गृहस्थी की व्यस्ततावश कह न पाये थे। उनका एक-एक शब्द मुझे स्वर्ग-सुख-सा अनुभव हो रहा था...

उन्होंने मेरी ठोढ़ी पर कटे दाग़ को दिखाते हुए कहा, तारा! जब तुम

बच्ची थीं, दादी की गोद में चढ़ने की जल्दबाज़ी में गिर गयीं, तभी तुम्हारी ठोढ़ी कट गयी थी। दुःख तो परिवार के सभी लोगों को हुआ था, पर आलम रो पड़ा था। जानती हो क्यों? तुमने जब पहली बार मुँह खोला, तो 'दा' का उच्चारण किया था, जिसे सुन कर आलम (जो कि पिताजी के चाचा की उम्र का था) बहुत ख़ुश हुआ था। कहता था, इसने पहली आवाज़ मुझे दी। तभी से वह तुम्हारी छोटी-छोटी सुविधाओं का ध्यान रखता था। यहाँ तक कि जब तुमको नींद नहीं आती थी, तो गोद में लेकर, अँधरिया रात में बाहर चक्कर लगाता रहता था। जब तुम उसके कन्धे से लग कर सो जाती थीं, तब वह घर आकर तुमको माँ के साथ सुला कर खाना खाने जाता था। इसलिए वह रात को देर से सोता था। चूँकि हम लोग गृहस्थ आदमी ठहरे, उसे तड़के उठ कर बैलों को खिलाना पड़ता था और सुबह सात बजते-बजते वह खेत पर हल जोतने चला जाता था। जब धान की बोआई का समय रहता था, चारों तरफ़ पानी-ही-पानी होता था। गाँव में बाढ़ आ जाती थी, तब भी आलम एक काम नहीं भूलता था; वह था धान के खेत से एक छोटी-सी मछली को पकड़ कर लम्बी दूब के सहारे हल से लटकाये हुए घर आना। तुम भी उसके आने के इन्तज़ार में दरवाज़े पर ही बैठी रहती थीं। आलम को देख कर, तुम इतनी ख़ुश होती थीं, मानों दिन-भर के बिछुड़ने के बाद किसी बच्चे को माँ मिली हो। आलम के थके-हारे होने पर भी कभी हम लोगों ने उसे क्लान्त मन नहीं देखा। तुमको देखते ही गोद में उठा लेता, फिर कुएँ पर जाकर, तुमको खड़ा कर मिट्टी से सने अपने हाथ-पैर धोकर तुम्हें गोद में लिये आँगन में आता था। मछली को साफ़ कर, उसमें नमक भर कर, दादी के अलाव पर पकाता था। फिर तुमको गोद में लेकर बहला-बहला कर खिलाता था। धीरे-धीरे तुम बड़ी होती गयीं और आलम बूढ़ा। जब तुम होस्टल पढ़ने चली गयीं, एक दिन आलम बहुत उदास मन होकर मेरे पास आकर खड़ा हुआ। मुझे लगा आज कोई बड़ी घटना घर में घटी या घटने वाली है अन्यथा आलम मेरे पास खड़ा क्यों है? मैंने पूछा, "चाचा! क्या हुआ?" सुनते ही, उसकी आँखों से आँसू ढुलक गये। हाथ जोड़ कर बड़ी ही नम्रता के साथ कहा, "मालिक! जब तक शरीर में जोश रहा, बल रहा, आपकी सेवा की। अब वह बल नहीं है कि मैं आप लोगों की सेवा कर सकूँ। थोड़ा-बहुत जो

हिलने-डुलने लायक़ हूँ, सोचता हूँ, अब उस मालिक की सेवा में लगा दूँ जिसने मुझे मनुष्य-योनि में जन्म देकर आप-जैसा मालिक दिया।" पहले तो उसके ये विचार मुझे अच्छे नहीं लगे। इसलिए कि बुढ़ापे में जब उसे हमारी ज़रूरत है, तब वह अकेला कहाँ भटकता फिरेगा... लेकिन उसकी ज़िद के सामने मैं हार गया और एक दिन बिना किसी को बताये वह घर से निकल गया। शाम तक वापस नहीं आया तो हम लोग उसके घर तक ढूँढ़ने गये, पर वह वहाँ भी नहीं मिला। फिर याद आयी, उसने कहा था, 'अब उस मालिक की सेवा में जाना चाहता हूँ'। एक दिन किसी ने बताया कि आलम दूर के एक गाँव के मन्दिर में पुजारी बन कर रहता है। मैं उसे ढूँढ़ता-ढूँढ़ता उस गाँव के मन्दिर में जा पहुँचा। आलम तो नहीं था, लेकिन और साधुओं से यह पता चल गया कि आलम उसी मन्दिर में पूजा-पाठ करता है। वह अभी भिक्षाटन पर निकला है। बाबूजी भिक्षा माँगने की बात कहते-कहते रोने लगे थे। मैंने उन्हें बहुत समझाया। उनके बहते आँसुओं को पोंछ कर आगे बताने का आग्रह किया। फिर उन्होंने अपने-आपको सम्भाला। आगे उन्होंने बताया, मैं घर आया, तुम्हारी माँ से सब कुछ ज्यों-का-त्यों बता दिया। जानते हो, रात-भर हम लोग सोये नहीं। आलम दूसरे के द्वार पर भिक्षा माँगने जाये, मेरे रहते यह नहीं हो सकता। फिर मैंने बैलगाड़ी तैयार करवायी। सभी तरह के अनाज के बोरे लदवाये। कपड़े, बाल्टी, अगरबत्ती, धूप-दीप, घी, अक्षत और दो हज़ार रुपये लेकर मन्दिर पहुँचा। संयोगवश आलम वहीं था। उसने मुझे देखते ही मेरे पैर छुए। उसे रोकते हुए मैंने कहा, "आलम! तुम साधु बन चुके हो, मेरे पैर छूना अब ठीक नहीं।" उसने कहा, "आप मेरे पहले मालिक हो। मन्दिर में जो बैठे हैं वे आपके बाद के मालिक हैं, इसलिए मुझे मना मत कीजिये।" पिताजी ने कहा, "आलम! तुम यहाँ ख़ुश हो, मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है। मगर ४० सालों तक तुमने मेरा कहना माना, कभी ना नहीं की। आज एक आज्ञा और देता हूँ, इसे मेरी ममता समझ कर मान लो, इन्कार मत करो। जो कुछ लेकर आया हूँ, इसे रख लो। यह तुम्हारे ही ख़ून-पसीने से उपजाया हुआ अनाज है। तुम पूजा-पाठ करो, मुझे कोई एतराज़ नहीं। मगर इस उम्र में भिक्षाटन पर मत जाया करो। मैं इसी तरह तुम्हारे अन्तिम समय तक तुम्हारी ज़रूरत की चीज़ें लेकर आ जाया

करूँगा।" आलम रोने लगा। पिताजी भी आँसुओं को समेटे हुए घर आ गये। लगभग दो सालों तक आलम ज़िन्दा रहा, इस बीच जब भी पिताजी मिलते, वह पूछता था, "मालिक! तारा अब कितनी बड़ी हुई? क्या उसकी शादी के लिए लड़का ढूँढ़ रहे हो? उसे अच्छे घर में अच्छा वर देख कर ब्याहना। तुमसे मेरी यही प्रार्थना है। वह मेरी बड़ी प्यारी है। उसकी याद दिल से जाती नहीं है। शायद, जायेगी भी नहीं!"

आज पिताजी और आलम, दोनों में से कोई भी नहीं है, लेकिन उनकी यादें शायद मेरे दिल से कभी जुदा नहीं होंगी। आज भी लगता है, पिताजी मेरे आगे बैठ कर बीती कहानियाँ सुना रहे हैं। ईश्वर उन दोनों की आत्माओं को शान्ति दे।

'पुरोधा', नव. ०८ —डॉ. तारा सिंह, 'कत्यूरी मानसरोवर' से साभार

तुझे मिल गयी राह

इतने घने अँधेरे में भी
तुझे मिल गयी राह!
आह, नक्षत्र हठीले!
ऐसे घिरे हुए नभ में भी
तूने खोज निकाली
यह छोटी-सी खुली हुई खिड़की!
तू विषाद की शताब्दियों के बीच
हर्ष के क्षण-सा,
तम के सीमा-हीन मरुस्थल में
प्रकाश के कण-सा,
अभियानों के खण्डहर में निर्भीक
अनहत प्रण-सा
हँसता जा मेरे नक्षत्र!
मिलेगा फिर भी तुझको इन्हीं घटाओं में
जब-तब मुस्काने का अवकाश!

—बालकृष्ण राव

निष्ठा का मूल्य

सोमदत्त नामक एक ब्राह्मण राजा भोज के पास मिलने के लिए पहुँचा और बोला—"महाराज! आपकी आज्ञा हो तो उज्जयिनी के नागरिकों को भागवत कथा सुना आऊँ। मुझे कुछ दक्षिणा प्राप्त हो जायेगी।" राजा बोले—"आप अभी कुछ और दिन भागवत पाठ का अभ्यास कीजिये।" ब्राह्मण ने सारी भागवत कण्ठस्थ कर ली और पुनः राजदरबार में उपस्थित हुआ, परन्तु उसे इस बार भी सकारात्मक उत्तर न मिला। इस प्रकार वह ब्राह्मण कई बार राजा के समक्ष उपस्थित हुआ, पर उसे हर बार निराश ही लौटना पड़ा।

किन्तु भागवत के निरन्तर पाठ से उसके अन्तर्मन में धीरे-धीरे भगवान् के प्रति निष्ठा जाग्रत् हो गयी। उसके मन से तुच्छ कामनाएँ तिरोहित होने लगीं और सात्त्विक निष्ठाएँ जन्म लेने लगीं। इस बार जब वह बहुत दिनों तक राजदरबार में नहीं पहुँचा तो राजा भोज ने उसका पता लगवाया। सारी स्थिति का पता चलने पर उन्होंने सोमदत्त को उज्जयिनी बुलवा कर भागवत कथा सुनाने का आग्रह किया।

आश्चर्यचकित सभासदों ने राजा से पूछा—"यह ब्राह्मण जब स्वयं कई बार यहाँ आया तो आपने इसे उपेक्षित किया और आज आप इसे स्वयं भागवत कथा के वाचन का निमन्त्रण देने पहुँचे, ऐसा क्यों?"

राजा बोले—"पहले यह धन के लोभ में कथा करना चाहता था, पर अब उसके अन्दर से प्रभुनिष्ठा के बोल निकलते हैं।" सच्ची श्रद्धा-निष्ठा का मूल्य नहीं होता।

—अज्ञात

एक घड़ी

एक घड़ी अशुभ काम में,
अशिव विचार में बिताने का अर्थ है,
हृदय में संग्रहीत
वैभव को नष्ट करना।

—'मधु-सञ्चय' से साभार

'नयी कोंपलें'

आख़िर क्यों?

(हमारे विद्यालय की एक विद्यार्थिनी की रचना)

चलो फिर उन्हीं विचारों पर ख़याल करें
आने वाले कुछ क्षणों का त्याग करें।
ऐसा प्रश्न जिसने सदियों पहले महावीर को मोक्ष प्राप्त कराया
आज उसी प्रश्न को मैंने अपने मन में दस्तक देते हुए पाया।
क्या है इस जीवन का अर्थ?
क्या है इस ब्रह्माण्ड का रहस्य?
क्या इनका उत्तर ढूँढ़ना ही है मेरे जन्म का कारण?
क्या महावीर और बुद्ध को समझें इसका उदाहरण?
बड़े-बड़े विचार, जैसे संसार का ख़याल करती हूँ,
और छोटी-छोटी कठिनाइयों से इतनी प्रभावित होती हूँ।
क्यों अपने प्रति दूसरों की घृणा को इतना महत्त्व देती हूँ?
क्यों महत्त्वहीन बातों में इतनी शामिल हो जाती हूँ?
इन विचारों पर ख़याल करने से भी कोई बदलाव नहीं होता
अगली सुबह फिर चाय से दिन शुरू होता
और पढ़ाई-नौकरी हर दिन का लक्ष्य बन जाता।
कब तक हम परिवार और पैसे में उलझे रहेंगे,
क्या हम कभी इन सब चीज़ों से आगे बढ़ पायेंगे?
आख़िर कब इस सामान्य जीवन के चक्र से स्वयं को मुक्त करूँगी?
हर मनुष्य एक अलग उद्देश्य से जन्म लेता है,
फिर क्यों हर आम इन्सान रोज़ की ही भाग-दौड़ में दिखायी पड़ता है?

—स्मिता चतुर्वेदी

हरियाली भले ही उगा लो,
ख़ुशहाली नहीं उगा सकते।

सारे जहाँ की दौलत आ गयी थी

पेश है बादशाह औरंगज़ेब की एक छोटी-सी दास्तान। वैसे औरंगज़ेब अपनी धर्मान्धता के लिए इतने मशहूर हैं कि उनका दूसरा रुख़ पृष्ठभूमि में ही रह जाता है। सचमुच उनमें कई गुण थे। यह तो जानी हुई बात है कि वे अपने ख़र्च के लिए राजकोष से एक पाई तक नहीं लिया करते थे। कहते हैं कि अपने शासनकाल में वे बिना नागा, रोज़ एक घण्टा क़ुरान मजीद लिखते थे और घण्टा-भर टोपियाँ सीने का काम करते थे। टोपियों की बिक्री से जो आमदनी होती बस वही पैसा अपने ऊपर ख़र्च करते थे। और साथ ही अपनी प्रजा का ख़याल भी ख़ूब रखते थे। उन दिनों प्रचलित प्रथा का भी वे बख़ूबी पालन किया करते थे—रात को भेस बदल-बदल कर अपनी प्रजा का हाल जानने के लिए शहर में गश्त लगाया करते थे।

यहाँ एक ऐसी छोटी घटना प्रस्तुत है जिसमें बादशाह के हृदय की कोमलता की झाँकी मिलती है।

औरंगज़ेब के गुरु, मौलाना अहमद जीवन, उमेठी के मक़तबे इस्लामिया के प्रधान मौलवी थे। शहंशाह बनने के बाद औरंगज़ेब ने कई बार अपने गुरु को दिल्ली आने की दावत दी, लेकिन अपनी मसरूफ़ियत की वजह से मौलाना का उमेठी से निकलना ही बहुत कम होता था, आख़िर, एक दफ़ा रमज़ान की छुट्टियों में वे दिल्ली तशरीफ़ लाये। औरंगज़ेब का दिल बाग़-बाग़ हो उठा। उन्होंने उनकी ख़ूब आवभगत की। खाने के वक़्त बादशाह ने मौलाना साहब से पूछा कि आप हमारे साथ खाना खायेंगे या शाही लंगर की शोभा बढ़ायेंगे। मौलाना जानते थे कि औरंगज़ेब का खान-पान बहुत सीधा-सादा होता है। झट बोल उठे—"भई वाह, हमें शाही लंगर से क्या वास्ता। हम तो अपने शागिर्द के पास आये हैं, उसी के साथ मिल-बैठ कर खायेंगे।" औरंगज़ेब की ख़ुशी चेहरे से टपक पड़ी। वाकई, एकदम से सादा खाना था—दाल-चावल-रोटी। न पकवान, न मिष्टान्न। मौलाना ने छक कर खाया, खाकर बोले—"बेटा, बहुत नसीबवाले हो जो शाही खान-पान से परहेज़ रखते हुए, ऐसा लज़्ज़तदार खाना खाते हो जिसमें वह मिठास भरपूर है जो किसी भी माँ के हाथों पके, सोंधी-सोंधी ख़ुशबू लिये खाने में होती है।"

खाने के बाद मौलाना जीवन ने अपने थैले से एक मोटा-सा सूती कपड़ा निकाल कर औरंगज़ेब को देते हुए कहा—"बेटा, यह मेरी माँ ने ख़ास तुम्हारे लिए रोज़े रखते हुए काता है और परहेज़गार जुलाहे से बनवाया है।"

औरंगज़ेब की ख़ुशी दिल में लबालब भर, आँखों के रास्ते छलक उठी। कृतकृत्य हो वह पाक वस्त्र उन्होंने अपने सिर-आँखों पर लगाया, और उसी वक़्त अपने एक विश्वस्त आदमी को बुला कर आदेश दिया कि यह पाक वस्त्र हमेशा मेरे सफ़र के सामान के साथ रहे ताकि अगर मैं कहीं परदेस में मरूँ तो यही मेरा कफ़न बने, आख़िर इससे ज़्यादा पवित्र कफ़न और हो ही क्या सकता है।

ईद के बाद जब मौलाना के जाने का वक़्त आया तो औरंगज़ेब ने बड़े आदर के साथ उनके हाथ का बोसा लेकर एक छोटी-सी थैली के अन्दर से कोई चीज़ निकाली, परतों पर परतें खुलने के बाद एक दुअन्नी निकली जिसे उन्होंने सम्मानपूर्वक अपने गुरु को भेंट किया।

गुरु-शिष्य के भावभीने वियोग के साथ-साथ दरबार में खुसुर-पुसुर चलने लगी। कहीं से आवाज़ आयी—"वाह! उस्ताद सेर तो शागिर्द सवा सेर निकले!" किसी दूसरे ने ताना मारा—"अरे भई, उस्ताद चार अंगुल का मोटा-झोटा कपड़ा उठा लाये तो शागिर्द ने दो आने देकर उसकी क़ीमत चुका दी!" तीसरा चिहुँका—"भई, वह डाल-डाल तो हम पात-पात!" बहुत समय तक यह मज़ाक दरबारियों के बीच चलता रहा।

कुछ साल बीत गये।

बादशाह ने बहुत बार अपने गुरु अहमद जीवन से मिलने का निश्चय किया लेकिन परिस्थितियों ने साथ न दिया। इत्तिफ़ाक़ की बात, एक बार फिर ख़ुद उस्ताद शागिर्द के हाल-चाल पूछने राजमहल में तशरीफ़ ले आये। आते ही औरंगज़ेब से पहला प्रश्न यही किया कि आलमगीर, तुम्हारी उस दुअन्नी में क्या जादू था कि वह तो सोना ही सोना उगलती जा रही है, मैंने उसके बिनौले ख़रीद कर खेत में बो दिये, इतनी डोडियाँ फूटीं कि कुछ पूछो मत, कपास बाज़ार में बेचा, और अधिक बिनौले ख़रीदे और यह सिलसिला ऐसा चला कि आज मैं मालामाल हो गया हूँ और अब भी पैसा है, मानों छप्पर फाड़ कर उतरता चला आ रहा है।

हाथ आकाश की ओर फैला, औरंगज़ेब गद्‌गद कण्ठ से बोल उठे,

"यह सब उस अल्लाहताला की इनायत है!"

फिर उन्होंने अपने एक सेवक को बुला कर अमुक जगह से फ़लाँ आदमी को बुला लाने का आदेश दिया। साथ-साथ १४ साल पुराना बहीखाता लाने को भी कहा। सेवक के द्वारा बादशाह का फ़रमान पहुँचा तो उत्तमचन्द की भय के मारे सिट्टी-पिट्टी गुम! ख़ैर, सामने आये तो बादशाह ने १४ वर्ष पहले अमुक दिन के व्यय का लेखा-जोखा माँगा। उसी में एक जगह दुअन्नी के ख़र्च का हिसाब मिला तो बादशाह ने तुरन्त टोक कर पूछा—"क्यों लाला, क्या आपको इस ख़र्च की याद है?"

लाला मानों अतीत में बह गया। उसकी आँखें चमकने लगीं, गला भावातिरेक से रुँध-सा गया और बोला—"जहाँपनाह! वह रात कैसे भुलायी जा सकती है भला? उस रात मेह इतनी ज़ोर से बरसा कि नया मकान उसके वेग को सह न पाया, छतें जगह-जगह से चूने लगीं, अकेली जान, पास-पड़ोस में कोई मकान तक न था कि किसी का दरवाज़ा खटखटाता। चारों तरफ़ शून्यता का राज था। इधर ठण्डक बढ़ती जा रही थी उधर घोर अँधेरा, रिसती छत के नीचे बीवी-बच्चे बेहाल हो उठे। मैंने छत पर बोरियाँ रख-रख कर पानी रोकने की भरपूर कोशिश की, लेकिन मेरी सारी कोशिशें बेकार साबित हो रही थीं, मदद के लिए चिल्ला कर किसी राहगीर को ही बुलाना चाह रहा था कि तभी बिजली ने मेरा साथ दिया, उसकी रोशनी में सरकारी लालटेन के नीचे कोई खड़ा दिखायी दिया। आवाज़ लगा कर बुला लिया, हम दोनों की दो-तीन घण्टों की जी-तोड़ मेहनत के बाद आख़िर छतों का रोना बन्द हुआ। इधर उसी वक़्त सुबह की अज़ान सुनायी दी और मेरे मज़दूर दोस्त ने और न ठहर पाने की अपनी मजबूरी दिखाते हुए अपनी मजूरी माँगी।

"मैं सचमुच उसे अपना दोस्त मान बैठा था और उसे कुछ पुरस्कार भी देना चाहता था इसलिए उससे कहा कि भय्या, दिन में आना, तुम्हें पूरी मजूरी के साथ-साथ यथोचित पुरस्कार भी दूँगा। मैं ठहरा व्यापारी, ऊपर से हमारा एक ही परिवार यहाँ रहता है, सारा रुपया-पैसा दूकान पर रखता हूँ।

"लेकिन उसने पुरस्कार की बात तो 'यह मेरा फ़र्ज था' कह कर उड़ा दी और उसी वक़्त अपनी मज़दूरी के लिए हठ करने लगा।

"आख़िर ढूँढ़-ढाँढ़ कर बच्चे के कुर्ते से एक दुअन्नी निकली। वही

बहुत संकोचपूर्वक, अगले दिन आने की बहुतेरी मिन्नतों के साथ उसके हाथ में थमा दी, अपनी तरफ़ से उस देवदूत-सरीखे इन्सान को बहुत ढूँढ़ने की कोशिश की, लेकिन..."

और तभी उत्तमचन्द की आँखें चमक उठीं—"जहाँपनाह, आप ही..." कहते-न-कहते वह उनके क़दमों पर गिर पड़ा, लेकिन जहाँपनाह ने उसके पहले ही उत्तमचन्द को अपने सीने से लगा लिया था।

इधर मौलाना अहमद जीवन बादशाह औरंगज़ेब की पीठ थपथपाते हुए बोले, "तभी कहूँ बरख़ुरदार कि दुअन्नी लेते वक़्त ही मुझे कुछ यूँ एहसास हो रहा था मानों इस दुअन्नी के साथ-साथ मेरी मुट्ठी में सारे जहाँ की दौलत आ गयी हो!"

औरंगज़ेब हाथ आकाश की ओर फैला गद्‌गदकण्ठ से बोल उठे, "यह सब उस अल्लाहताला की इनायत है!"

'अग्निशिखा', जून २०१३ से —वन्दना

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पॉण्डिचेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पॉण्डिचेरी ६०५००१, भारत

सम्पादक : वन्दना

स्वामी : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी-६०५००१

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर, झुंझुनू

श्रीअरविन्द दिव्य जीवन शिक्षा-केन्द्र, झुंझुनू (राजस्थान)

श्रीअरविन्द सोसायटी द्वारा स्थापित इस संस्था का मूल उद्देश्य श्रीअरविन्द व श्रीमाँ के मनुष्य जाति के लिए दिव्य जीवन के स्वप्न को साकार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह केन्द्र ऐसे श्रद्धालुओं के समूह के निर्माण की अभीप्सा रखता है जिनके जीवन का केवल यही उद्देश्य हो।

यह केन्द्र पूर्ण रूप से आवासीय है जिसमें छात्र-छात्राओं की शिक्षा, आवास व भोजन पूर्णतः निःशुल्क है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी है। शैक्षणिक सत्र हर वर्ष १५ अगस्त से प्रारम्भ होता है तथा केवल ६ से १२ वर्ष तक की आयु के बच्चों को ही प्रवेश दिया जाता है।

यह केन्द्र पूर्ण शिक्षा प्रदान करने तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए समस्त साधन प्रदान करने की अभीप्सा रखता है। जो अभिभावक अपने बच्चों के लिये सरकारी प्रमाण-पत्र, डिग्री व डिप्लोमा की आकांक्षा नहीं रखते अपितु उनकी सत्ता के केन्द्रीय सत्य के अनुरूप उनके पूर्ण व सर्वांगीण विकास की अभीप्सा रखते हैं और अपने बच्चों को इस शिक्षण-संस्था में प्रवेश दिलाने के इच्छुक हैं, वे पूरी सूचना के लिए निम्नलिखित पते पर सम्पर्क करें।

जो आध्यात्मिक पिपासु इस केन्द्र के कार्य में सहयोगी होना चाहते हैं तथा अपना जीवन इस कार्य में लगा कर साधनामय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे लोग अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

पंकज बगड़िया
श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर
मीरा अम्बिका भवन, खेतान मोहल्ला
पो०-झुंझुनू—३३३००१ (राजस्थान)
टेलीफोन—(०१५९२) २३५६१५
टेलीफैक्स—२३७४२८
e-mail: sadlecjjn@rediffmail.com
URL: WWW.sadlec.org

Sri Aurobindo Society
INDORE BRANCH
Creating the Next Future

विनम्र अनुरोध

'श्री अरविन्द-विश्व-निलयम्' नव-निर्माण हेतु

आदि शक्ति मां भगवती एवं परम प्रभु की असीम कृपा और आशीर्वाद से श्री अरविन्द सोसायटी पुदुचेरी शाखा इन्दौर द्वारा एअरपोर्ट के निकट सर्वे क्रमांक 126/8, छोटा बांगड़दा में अपने स्वामित्व की 13,495 वर्गफीट भूमि पर दिव्य समाज निर्माण की आध्यात्मिक गतिविधियों के संचालन हेतु एक शक्तिपीठ पूर्ण योग साधना एवं ध्यान केन्द्र श्री अरविन्द-विश्व- निलयम् के नव-निर्माण का कार्य 25 जनवरी 2021 से शुभारंभ हो चुका है।

आपको यह सूचित करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है कि उक्त वृहद् कार्य -निर्माण के प्रथम चरण में तल मंजिल, प्रथम मंजिल एवं द्वितीय मंजिल जिसमें सर्व सुविधा युक्त हॉल, श्री माँ - श्री अरविन्द के दिव्य - ग्रन्थों की लायब्रेरी, अतिथि -कक्ष, किचन, डाइनिंग हॉल तथा एक रमणीय उद्यान में श्री अरविंद के दिव्य - देहांश की प्रतिष्ठा हेतु समाधि स्थल के निर्माण का लक्ष्य है। भविष्य में इसे विस्तार देने की योजना है।

इस दिव्य निर्माण कार्य की अनुमानित लागत 2.5 करोड़ रूपये है। यह कार्य सभी के सहयोग तथा सामूहिक प्रयास से ही संभव हो सकता है। आपके द्वारा दी गई दान-राशि को आयकर अधिनियम की धारा 80(G) के अंतर्गत छूट की सुविधा है।

आपकी दान-राशि "श्री अरविन्द सोसायटी इन्दौर" के नाम से Cash /Cheque /DD/ NEFT/ RTGS में स्वीकार कर रसीद प्रदान की जाएगी। आपका आर्थिक सहयोग इस दिव्य कार्य को गति प्रदान करेगा ।

निवेदक

चेअरपर्सन
डॉ.सुमन कोचर
sumankocher@rediffmail.com

सेक्रेटरी
मनोज कियावत
mkiyawat@gmail.com

Branch Office: 541, M. G. Road, Gorakund, OPP ICICI Bank, Indore (M. P) - 452 002
Phone: 0731- 2452500, Mob: 9826067685 ,9826066520
Email: sasindore@aurosociety.org, Website: www.sriaurobindosocietyindore.com
Head Office: Puducherry - 605 001, Website: www.aurosociety.org

आप QR कोड स्केन करके भी डोनेशन कर सकते हैं।

Bank Details -
A/C Name - Sri Aurobindo Society Indore
SB A/C No.- 0325101016104
Bank Name - Canara Bank
Branch - M. G. Road Indore - 2 (M.P.)
IFSC Code - CNRB0000325

Proposed View

Date of Publication: 1st May 2024
Rs. 30 (Monthly)

अग्निशिखा एवम् पुरोधा, वर्ष १, अंक १०, PONHIN00007 (RNI)
प्रकाशक स्थलः सोसायटी हाउस, ११ सैं मातैं स्ट्रीट, पांडिचेरी ६०५००१

SRI AUROBINDO
A New Dawn
A HAND-PAINTED ANIMATION FILM BY SRI AUROBINDO SOCIETY

But I dare not rest till my task is done
And wrought the eternal will.
~Sri Aurobindo

OFFICIAL SELECTION BEVERLY HILLS 24 film festival
WINNER Best Animation Film Spring Time International Film Festival 2023
WINNER Special Jury Mention Jaipur International Film Festival JIFF 2024
WINNER Best Animation Film Asia India Awards of Excellence 2023

Watch the 28-minute Film in English & Hindi
at **www.anewdawn.in**